मानव मन्दिर

फ़कीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

FORM 1

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-5-85

Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

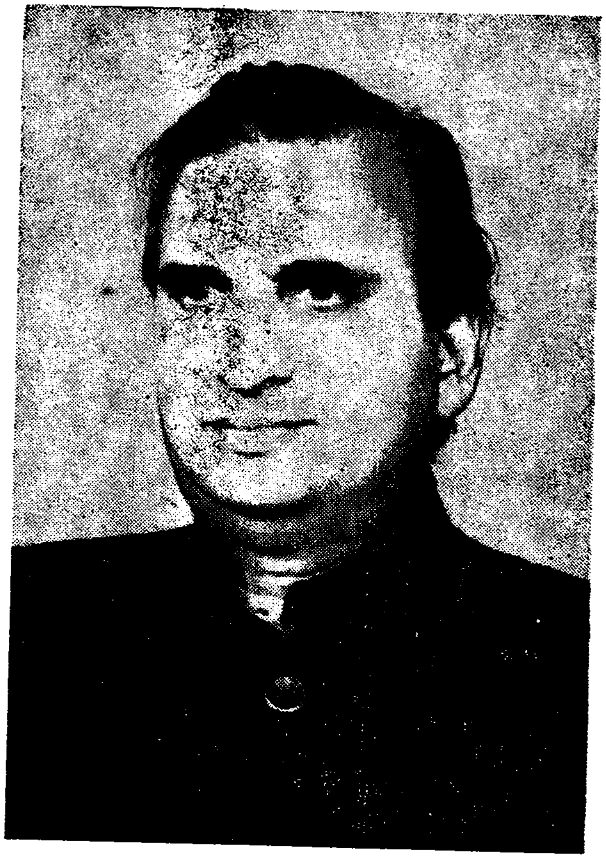

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 17 | बुधवार, 10 अक्टूबर 1990 | संख्या 6

अधिकार

परमसन्त हज़ूर दाता दयाल जी महाराज

'जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरत देखी तिन तैसी।'

योग्यता, अधिकार तथा संस्कार के समझे बिना, जो कोई काम करता है, उसे सफलता नहीं मिलती बल्कि पग-२ पर असफलता ही मिलती है। सन्त कहते हैं कि जगत् की रचना सुरत तथा शब्द का ही खेल है। सुरत तवज्जह को कहते हैं। जिस व्यक्ति की जैसी ही तवज्जह है, वह वैसा ही काम करने के लिए आया है। उसकी रुचि, उसकी आदत तथा उसकी योग्यता भी उसी ही तरह की होती है। यह विश्व दुविधा का स्थान है, दुविधा इसकी जान है। यहाँ कोई भी दो वस्तुएँ एक जैसी दिखाई नहीं देतीं। एक बाप के दो बेटे, एक पौधे के दो पत्ते, एक व्यक्ति के दो चित्र, एक छापे की दो पुस्तकें, एक ही प्रकार की नहीं मिलेंगी। देखने वालों को इनमें अन्तर दिखाई देगा, क्योंकि प्रकृति में प्रबन्ध ही ऐसा है कि एक चीज़ दूसरे से भिन्न दिखाई दे। प्रत्येक जीव के जीवन का उद्देश्य भी भिन्न-२ होता है। कोई कुछ है और कोई कुछ। सूर्य चमकता है, बादल गरजते हैं, पानी बहता है, हवा चलती है। इनमें से हरएक का रूप, रंग, चाल, व्यवहार अलग-२ हैं। यदि वे अपना काम करते हैं तो अच्छे प्रतीत होते हैं और यदि दूसरे की नकल करते हैं, तो भद्दे लगते हैं।

बिलकुल यही हाल मानवमात्र का है। किसी को कोई काम सौंपा गया है किसी को कोई। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रकृति का अध्ययन और अपने मानसिक भावों की निरख-परख करते हुए, काम करे तो कोई कारण नहीं कि सफलता उसके पाँव न चूमे। परन्तु खेद की बात तो यह है कि मनुष्य राग, ईर्ष्या, द्वेष, मोह तथा लोभ और नकल में पड़ कर, अपनी ही प्रकृति के मुताबिक तो काम करते नहीं और व्यर्थ ही दूसरों की नकल का दम भरने के शौकीन रहते हैं। तेली का काम पान वाला नहीं कर सकता "जिसका काम उसी को साजे।"

मुझे प्रायः लोग मिलने आते हैं। उनकी आयु 80-२ वर्ष की हो गई। भक्ति करते-२ आयु बीत गई, परन्तु सफलता कुछ भी नहीं मिली। ढाक के वही तीन पात। उसका कारण यह है कि लोग अपनी निरख-परख करके, यह जानने की कोशिश नहीं करते कि उनकी प्रकृति कैसी है। वे यह नहीं सोचते कि उन्हें क्या काम करना चाहिए। दूसरे किसी अनुभवी व्यक्ति या गुरु से सलाह नहीं लेते, जो उनके भावों तथा प्रकृति को भली-भाँति जानकर, उन्हें सीधी राह पर लगाये। बाद में पछताते हैं कि जीवन यूँ ही गँवा दिया। खैर वह यदि इस जन्म में नहीं सम्भलते तो अगले-जन्म में सम्भलेंगे। दिल की इच्छाओं को दबा देने से कोई आध्यात्मिक नहीं बनता। आप प्रबल इच्छा को लाख दबाओ वह दबेगी नहीं। उसे दबाओ नहीं, उसकी दिशा बदल दो। तब वह धीरे-२ अन्दर ही अन्दर काम करती रहेगी और समय पर आपका काम बना देगी।

अधिकतर लोग दुनिया में बहुत सा काम देखा-देखी ही करते हैं। अपनी तो समझ नहीं, बूझ नहीं बस ! जो औरों को करते देखा उसीकी नकल कर ली। इसका

परिणाम दुःख तथा परेशानी ही होगा, क्योंकि संसार के भी दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते, न शक्ल में न स्वभाव में। यदि आप सफल लोगों की सूची देखोगे तो कोई भी दो सफल व्यक्ति एक जैसी प्रकृति के नहीं मिलेंगे। एक के लिए काम करने का ढंग एक है, दूसरे के लिए दूसरा। न तो दो अवतार एक तरह के मिलते हैं और न ही देवता। जो है, सो है। प्रत्येक व्यक्ति विशेष प्रकार का स्वभाव तथा अधिकार लेकर आया है। उसकी भलाई इसी में है कि वह अपने स्वभाव तथा संस्कार के अनुसार मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास के साधन ढूँढ़े। गुरु की सहायता ले सलाह ले। गुरुभक्ति से उसका मार्ग सरल हो जायेगा।

तीसरी बात यह है कि जब अपने संस्कार समझ में आ गये और अपने अधिकार का पता चल गया और व्यक्ति ने ठीक मार्ग पर पाँव रख दिया, तो उसमें उसे सच्चा होकर चलना चाहिए। शुद्ध मन से इस प्रकार काम करना चाहिए कि सुरत की धार दूसरी ओर जा ही नहीं पाये। काम में सफलता, ध्यान तथा एकाग्रता से ही आती है। मन शुद्ध होने से सांसारिक सफलता तो मिलेगी ही मिलेगी, किन्तु उसके साथ-२ अन्दर के अनुभव भी होंगे। आप आध्यात्मिकता की ओर बढ़ोगे।

उदाहरण दे रहा हूँ। किसी महिला का किसी पुरुष से प्रेम था। प्रेम सच्चा था। महिला के जीवन का सहारा तथा केन्द्र वही पुरुष ही था। उसके दिल में सिवाय उस पुरुष के किसी और की जगह ही नहीं थी। प्रेम की यह विशेषता है कि जब वह आकर, दिल में बस जाता है, फिर वह और किसी इच्छा या भावना को अपने में रहने ही नहीं देता। सबको निकाल कर बाहर फेंक देता है :—

जहाँ बाज़ बासा करे, पंछी रहे न और।
जा घट प्रेम प्रगट भया, नहीं कर्म की ठौर।।

वह महिला अपने पुरुष की धुन में मग्न रहती थी। उसे खाने, पीने तथा सोने में आनन्द नहीं आता था। महीनों बीत गये, उसे अपने पुरुष के दर्शन न हुए। आखिर उसे पता चला कि वह पुरुष किसी जगह ठहरा हुआ है। बस! महिला को फ़िर चैन कहाँ! वह चल पड़ी। दीवानी और बावली की दृष्टि तो बस उस पुरुष की ओर थी। वह तो मस्ती में चली आ रही थी। मार्ग में बादशाह अकबर का तम्बू लगा था। प्रातः के समय बादशाह तम्बू के बाहर निकल कर नमाज़ पढ़ रहा था। महिला उस ओर से गुज़री वह बादशाह के जानमाज़ (नमाज पढ़ने के लिए बिछाया हुआ कपड़ा) को अपने पाँवों से रौंदती हुई चली गई। अकबर बादशाह को बहुत ही क्रोध आया, परन्तु नमाज़ पढ़ते समय उसे क्रोध को रोकना पड़ा। वह महिला वहाँ से अपने प्रीतम को मिलने चली गई और उससे मिलकर खुशी-२ उसके साथ उस जगह पर पहुँची जहाँ बादशाह नमाज पढ़ कर फ़ारिग हो गया था। महिला को बादशाह पहिचान गया और बहुत ही क्रोध से बोला "गुस्ताख औरत! तुझे यह भी ख्याल नहीं आया कि यह जानमाज़ है और तू इसे अशुद्ध पाँवों से रौंदती हुई चली गई।"

स्त्री तो प्रेम में डूबी हुई थी, मुस्करा कर निडरता से बोली,

नर राची सूझी नहीं, तुझ कस लखियो सुजान।
पढ़ कुरान बौरे भयो, नहीं राचा रहमान।।

अर्थात्, "हज़रत! (भद्र पुरुष) मैं तो मनुष्य ही के प्यार में बावली थी। मैंने तो न तो आपको देखा और न

ही आपके जानमाज़ को। आप तो खुदा से प्रेम कर रहे थे, नमाज़ पढ़ रहे थे फिर आपने मुझे कैसे देखा ? इससे तो पता चलता है कि नमाज़ पढ़ते समय भी आपका ध्यान नमाज़ या मालिक की ओर नहीं था। यदि होता तो आप मुझे न देखते।"

बादशाह उस महिला की बात सुनकर बहुत ही शर्मिन्दा हुआ।

प्रेम की राह पर नकलची तथा भाण्ड नहीं बनना चाहिए। सदा सच्चे बनो तथा सच्चे होकर रहो, तब तो आनन्द में रहोगे। यदि यों ही नकल करते फिरोगे तो फिर रहे भाण्ड के भाण्ड, सच्चाई से वंचित तथा प्रेमरूपी धन से भाग्यहीन।

लखनऊ में एक भाण्ड रहता था। वह नकल बहुत ही अच्छी उतारता था। उस समय वाजिद अली शाह का ज़माना था, जो नाच-गाने के लिए प्रसिद्ध था। बादशाह ने एक बार उस भाण्ड को एक योगी की नकल करने को कहा। भाण्ड पद्म आसन में जम कर बैठ गया। साँस चढ़ा ली। दिल की गति बन्द नब्ज़ (नाड़ी) रुक गई, समाधि लग गई। वहाँ पर उपस्थित सभी लोग हैरान रह गये। किसी-२ को तो ऐसे लगा जैसे कि भाण्ड मर गया हो। परन्तु बादशाह ने कहा कि नहीं भाण्ड ज़िन्दा है। घण्टों बीत गये, परन्तु भाण्ड उसी प्रकार गतिहीन बैठा रहा। अन्त में जब वह होश में आया तो बोला, "बादशाह सलामत ! इस बार तो पाँच सौ रुपया इनाम मिलना चाहिए।"

देखा आपने ! भाण्डों की मज़दूरी इनाम पाना है। जो व्यक्ति जिस विचार को लेकर काम करता है, उसके मन में

उसी ही तरह का ख्याल रहता है और आखिर में फुरता भी वही विचार है। भाण्ड ने योगी का स्वांग अवश्य रचा और समाधि में भी बैठा। परन्तु समाधि से उठते ही उसने भाण्डों वाली बात यानि कि इनाम प्राप्त करने की बात की, समाधि या आध्यात्मिकता की नहीं अतः आवश्यकता इस बात की है कि एक अधिकारी दिखावे की बातों में न आये, बल्कि इस बात को जानने की कोशिश करे कि उसके साधन और अभ्यास का असली उद्देश्य क्या है। यदि किसी ने एक नकलची या भाण्ड की तरह योग का अभ्यास भी कर लिया, तो क्या हुआ ? उसकी दृष्टि तो बस सिद्धि-शक्ति तक ही रह गई वह आगे क्या बढ़ेगा ? कसलियत का साक्षात्कार तो उसे हुआ नहीं, जो कि असली योग या योग का उद्देश्य है।

इस संसार में हरएक व्यक्ति की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। प्रकृति का यह नियम है कि जिस व्यक्ति को जिस चीज़ को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है, चाह होती है, वह उसे मिलकर ही रहती है। यदि कोई दूसरा व्यक्ति जिसमें चाह तथा इच्छा तो नहीं, वह केवल उस व्यक्ति की नकल ही करता है, तो उसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता। एक रोगी के लिए कभी-२ थोड़ी सी मात्रा में विष अमृत का काम देता है, परन्तु स्वास्थ्य के लिए तो वह घातक ही है। पूर्व में एक कहावत है, "किसीको बैंगन पथ किसी को बैंगन ज़हर।" धर्म में भी ऐसा ही समझो। उदाहरणस्वरूप, एक प्रौढ़ व्यक्ति हैं, जिसने अपना जीवन लगभग समाप्त कर लिया है। बस अब थोड़ी सी ही कसर रह गई है। वह सामान्य साधन का अभ्यास कर रहा है, यदि वह व्यक्ति, जो कि अभी प्रारम्भिक सीढ़ी पर है उसकी

नकल करे और उसका रंग-ढंग जीवन में लाये तो क्या उसे लाभ होगा ? नहीं, नहीं उसे लाभ नहीं होगा बल्कि हानि ही होगी। इसलिये कहा गया है गुरु के उपदेश पर चलना सीखो, गुरु की चाल न चलो। पूर्ण तथा नीच व्यक्तियों में पृथ्वी-आकाश का अन्तर होता है। पूर्णपुरुष आत्मज्ञान की चोटी पर होते हैं नीच तो अभी पहली सीढ़ी पर भी नहीं चढ़े होते।

लाहौर नगर में एक फकीर हुए हैं जिनका नाम माधो लाल था। लोग उन्हें लाल माधो भी कहते थे। उनकी यह आदत थी कि वह सुन्दर-२ बच्चों को अपनी गोद में लेकर प्यार करते थे। उनके ऐसे व्यवहार से बच्चों के माता-पिता बहुत खुश हो जाते थे और फकीर की बहुत आव-भगत होती थी। एक ढोंगी मुसलमान फकीर उनके साथ हो लिया। जो-२ काम लाल माधो करते, वह फकीर भी करता। पंजाब में फकीरप्रस्ती बड़ी प्रसिद्ध है। अतः लोग उस मुसलमान फकीर की भी बहुत इज्जत करने लगे। आप क्या समझते हैं कि वह नकलची फकीर कुछ बन गया ? नहीं, उसने बनना क्या था वह आध्यात्मिकता के लिए तो लाल माधो साहिब के पास आया नहीं था, वह तो केवल सांसारिक मान का भूखा था। बाबा लाल माधो ने जब उस फकीर की यह दशा देखी तो उन्हें दुःख हुआ। उसे शिक्षा देना चाहते थे। एक दिन जब वह उस फकीर के साथ चल रहे थे, तो रास्ते में उन्होंने एक साँप देखा। बाबा जैसे बच्चों को उठा कर प्यार किया करते थे, उन्होंने साँप को भी उठा लिया और उसे प्यार करने लगे। थोड़ी देर के पश्चात् उन्होंने साँप को उस फकीर के निकट रख दिया। साँप को देखते ही फकीर डर के मारे भाग गया, उसके बाद उसने बाबा की नकल करनी छोड़ दी।

सन्त सद्गुरु की व्याख्या

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

मैं इस बार ग्राम मुल्लांपुर, जिला लुधियाना में अपने मित्र मंगलसेन वर्मा के घर गया। वह मेरे बसरा-बगदाद के साथी हैं। उनके पिता स्वर्गीय श्री गोपाल दास सहाय जी वर्मा राधास्वामी मत के अनुयायी थे और उनका सारा परिवार राधास्वामी मत को मानता था। श्री गोपाल सहाय जी ने अपने जीवन के आखिरी चालीस वर्ष सन्तमत के साधन तथा अभ्यास में बिताये और पाँच पुस्तकें हस्त-लिखित बहुत ही सुन्दर अक्षरों में बिना किसी काट-छाँट के लिखीं। यह किताबें मैं अपने साथ लाया और उनका अवलोकन किया। मास्टर मोहन लाल फाजिल भी मेरे साथ थे, उन्होंने भी उनका अध्ययन किया। उनके एक लेख को पढ़कर मास्टर मोहन लाल जी ने, मुझे उस पर प्रकाश डालने के लिए कहा। वह लेख तो लम्बा है, परन्तु उसका सारांश यह है :—

"सत्पुरुष के दरबार में समस्त संसार के समाचार प्रत्येक समय पहुँचते रहते हैं और उनकी सूचना मिलने पर मालिक की मौज ने अपने युवराज परमहंस (अगम पुरुष) को आदेश दिया कि वह पृथ्वीमण्डल पर आयें। वह आये। उनके साथ हंस सोहं पुरुष से भी आये और वे विभिन्न रूपों में प्रकट हुए। वे सतपुरुष के अंश-वंश थे। कोई वैद्य, कोई डाक्टर, कोई इञ्जीनियर, कवीश्वर, पण्डित, बलवान्,

योद्धा, शस्त्रधारी, कलाकार कोई व्यापारी बना। कोई साधु, संन्यासी, परोपकारी, दानी, भक्त, आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, भाई आदि बने और संसार में प्राणियों का कल्याण करते रहे।

कहा जाता है कि सन्त कबीर ने सन्तमत की नींव डाली और पृथ्वी में रहने वालों को एक ऐसा मार्ग बतलाया कि वह अपनी इच्छानुसार बिना किसी रोक-रुकावट के सतलोक तक पहुँच जायें और इस मार्ग की युक्ति बताने और आदेश देने का उत्तरदायित्व समय के सन्त सद्गुरु पर छोड़ा गया आदि आदि। गोपाल सहाय जी ने इस लेख में अधिक बल इस बात पर दिया है कि जो कुछ है, वह समय का सद्गुरु है। उसके दर्शन, सत्संग और तन, मन, धन की सेवा के प्रताप से मानव के समस्त अपराध क्षमा हो सकते हैं और यह भी लिखा है कि सत्संगियों के आदर्श जीवन से समस्त भूमण्डल का वातावरण प्रिय और सुहावना बना दिया जाय, जिसको जो कोई भी देखे चकित हो जाय और वह समय के सन्त सद्गुरु के चरणों में चला जाय। तब भविष्य में कोई अधूरा गुरु किसी जिज्ञासु को पथभ्रष्ट न कर सके।

मास्टर मोहन लाल के प्रश्न पर मेरे नेत्र बन्द हो गये। दाता दयाल जी के शुद्ध स्वरूप की कृतज्ञता समझ में आई, जिनके द्वारा मैं इस सन्तमत में आया और अपनी कुरेद को मिटा सका।

मोहन लाल जी बोले, "पण्डित जी! आपकी आकृति इस समय विशेष प्रकार का प्रकाश, आनन्द और शान्ति की वर्षा कर रही है आपको क्या मिला है?

मैं बोला, "मोहन लाल! सच कहता हूँ तो संसार

काफ़िर कहेगा। मुझे मिला :—

तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा, सत्तनाम सतगुरु गति चीह्ना।

"मेरे अन्तर में जो आन्तरिक नाम और सद्‌गुरु का जो आकर्षण था, वह समाप्त हो गया। यह नाम और सद्‌गुरु तो केवल मानवीय सुरत की शंकाओं, सन्देहों तथा भ्रमों को निवारण करने के लिए था। दाता दयाल सन्त सद्‌गुरु की दया और अन्तरी अनहद शब्द नाम के प्रभाव से सब नष्ट हो गये मिट गये और मुझे वास्तविकता और सत्यता का ज्ञान हो गया। अब मैं प्रत्येक रूप से शान्त हूँ और शरीर में रहते हुए अपने निजदेश की सैर करता रहता हूँ। मैं ऐसी अवस्था में चला जाता हूँ जिसकी अवस्था को वाणी व्यक्त नहीं कर सकती। आपने अभी-२ जो प्रश्न किया था कि जो कुछ गोपाल सहाय ने लिखा है क्या वह सत्य है? मेरा उत्तर है हाँ वह सत्य है। किन्तु इस सच्चाई का विश्वास कोई सन्त सद्‌गुरु ही किसी को करा सकता है। देखो ना! यह लोक-लोकान्तर हैं। आकाश की ओर दृष्टि डालो लाखों, करोड़ों तारामण्डल हैं या नहीं?

मोहन लाल :—हाँ हैं तो। वर्तमान विज्ञान ने भी ऊपर के सूर्य का उल्लेख किया है यहाँ तक कि ऊपर के लोकों के फोटो भी लिये हैं।"

मैं :—मास्टर साहब! हमारा और आपका शरीर इस विराट् 'पुरुष' तारागण चन्द्रमा सूर्य आदि की किरणों द्वारा, जो इस पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार का खाद्य, भोजन आदि उत्पन्न करती हैं, उनके कारण बनता और बिगड़ता है। वर्तमान चिकित्सक विटामिन्स से शरीर की बनावट तथा स्वास्थ्य को बनाते हैं। इसी प्रकार, मानव का मन भी किसी और प्रकार के लोकों, व तारागणों की धारों से बनता है। इन लोकों के नाम ब्रह्म लोक, विष्णु लोक, शिव

लोक मन्धर्व लोक आदि हैं। इसी प्रकार हमारी आत्मिक अवस्था, जो प्रकाशस्वरूप है, वह प्रकाश भी ऊपर के लोक-लोकान्तर, जिनको सन्तजन सोहं पुरुष आदि के नाम से पुकारते हैं, उनही की किरणों से बनी है। अंतः हमारे शरीर में जो कुछ भी है, वह ऊपर के लोक-लोकान्तर की धारों से बना हुआ है।

मोहन लाल :—वेदान्त तो कहता है कि सब कुछ मानव की आत्मा ही है।

मैं :—जिस दृष्टि से वेदान्त ने यह कहा है कि आत्मा ही सब कुछ है, वह बौद्धिक दृष्टि तक ठीक ही है। किन्तु वास्तव में देखा जाय तो जो कुछ मानवीय शरीर, मन और आत्मिक अवस्थाएँ विद्यमान हैं, उनकी बनावट, पालन-पोषण सब का सब ऊपर के लोकों, इस जगत् के जलवायु आहार आदि का परिणाम है।

इसके अतिरिक्त इस शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रचना में एक और वस्तु है जो शरीर के तीनों प्रकार के बोधभानों की साक्षी है, जो इस खेल को देखती है। उस साक्षी का नाम सुरत है। यह सुरत भी किसी और लोक से आई है। उस लोक का नाम मेरे विचार में अगम लोक है। सुरत को अपने शरीर, मन, प्रकाश व शब्द से निकाल लो। यह समस्त खेल समाप्त हो जायेगा।

जिस प्रकार किसी वस्तु के हमारे शरीर के साथ लगने से हमारी नाड़ीगति हमारे मस्तिष्क को यह सूचना देती है और मस्तिष्क उस सूचना के अनुसार सहायता करता है। इसी प्रकार, यह समस्त सृष्टि एक पूर्ण तत्त्व है। पूर्ण-पुरुष ही महापुरुष है। इसकी आत्मा सत्तलोक है, मन सोहं पुरुष है और स्थूल रचना विराट् पुरुष है और उसका साक्षी अनामी लोक है। अकाल पुरुष ज्ञात है जिसकी अंश

हमारी सुरत है। हमारे शरीर में एक तबियत है, जो हमारे शरीर को स्वास्थ्य की ओर आकर्षित करती है। औषधि चिकित्सा आदि तो केवल साधनमात्र ही हैं। हमारे मन के भीतर एक ठहराव की शक्ति है, जो कि चंचलता और आपत्ति के समय जाने तथा अनजाने हुए सुख-चैन या ठहराव को उत्पन्न करने का प्रयत्न करती है। योग साधन विधि है। ऐसे ही आत्मिक अवस्था में एक वस्तु मन और शरीर को भूल कर अपनी आत्मा में प्रसन्नता प्राप्त करने की ओर आकर्षित करती रहती है। भजन एक युक्ति है, साधन है। जिस प्रकार यह शक्तियाँ हमारे अन्दर हैं, उसी प्रकार इस बाह्य पूरण पुरुष के अस्तित्व में भी वही शक्ति काम करती है और वह बाहरी शक्ति हमारे अन्दर भी है।

हम सब जीव-जन्तु इस पूरण पुरुष के अस्तित्व में ऐसे ही हैं जैसे हमारे शरीर में अनेक प्रकार के कीटाणु हैं। जिस प्रकार हमारे अन्दर के कीटाणु हमें पूर्णरूप से नहीं जान सकते, उसी प्रकार यदि कोई प्राणी यह चाहे पूरण पुरुष का पूर्ण भेद ले ले, यह असम्भव है। अतः समस्त साधु-सन्त जो इस मार्ग पर चले, सबने अन्त में उस मालिक को आश्चर्यरूप या बेअन्त कहा और उसके समस्त खेल को मौज कहा और प्रत्येक व्यक्ति को मौज के आधीन रहने का उपदेश दिया।

जिस नियम के अनुसार, हमारे शरीर पर बाहरी प्रभावों से हमारा मस्तिष्क प्रभावित होता है, उसी नियम के अनुसार जैसी-२ माँग तथा आवश्यकता संसार में होती है, ऊपर के लोकों से एक शक्ति आकर, उस माँग की पूर्ति करती है। शारीरिक रोग को दूर करने के लिए चिकित्सक हैं वैद्य हैं। धन्वन्तरी वैद्य को अवतार माना गया है। विश्वकर्मा उद्योग, कला-कौशल की जान है, उसका भी आदर

मान है। साधु-सन्त जो मानसिक तथा आत्मिक शक्ति देते हैं प्रतिष्ठित हैं। सामाजिक संगठन और प्रेम की नींव रखने वालों का भी आदर-मान होता है। शूरवीरों और सूरमाओं का भी आदर-मान प्रतिष्ठा है, क्योंकि इनसे जनसाधारण की रक्षा होती है।

इसके अतिरिक्त एक और शक्ति है जो सुरत को सदैव के लिए इस शरीर, मन और आत्मा से निकालती है। उस शक्ति को सन्त सद्गुरु कहते हैं। मेरे लिए दाता सन्त सद्गुरु सिद्ध हुए, जिनकी दया से मैं शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोधभानों के सुख-दुःख की परवाह नहीं करता हूँ। सन्त कबीर के शब्दों की व्याख्या मैं सत्संगों में किया करता हूँ। कितनी उच्चकोटि की शिक्षा है। यदि वह मनुष्य की समझ में आ जाय, तो फिर भवसागर का खेल समाप्त हो जाय। सुरत अपनी ज़ात में मिलकर अपने अस्तित्व को खोकर सर्वव्यापक हो जाय। जिज्ञासुओं का आवागमन सद्गुरु की कृपा से बन्द हो सकता है।

मोहन लाल :—परन्तु महाराज जी ! व्यास वाले अपने ही गुरु को सन्त सद्गुरु मानते हैं, आगरा वाले अपने गुरु को तथा अन्य सभी शाखाओं वाले अपने-२ गुरु को मोक्षदाता मानते हैं। क्या यह सारे के सारे सन्त सद्गुरु हैं ?

मैं :—हाँ, सभी हो सकते हैं यदि वे गुरु अपने शिष्यों को उनके शरीर, मन और आत्मा से परे ले जाते हैं। परन्तु यदि वे स्वयं ही इन सोपानों से परे नहीं गये, वह चेलों को कैसे ले जायेंगे ? चेलों को क्या अधिकार है कि वह केवल अन्धविश्वास अथवा अज्ञान के कारण अपने गुरु को सन्त सद्गुरु कहें और उसका प्रचार करें और दूसरों का खण्डन करें। मैंने तो सारी ज़िन्दगी अनुभव करते-२ बिता

दी अब तो अनुभव आनन्द के भी आगे जाना चाहता हूँ। यह अनुभव आनन्द ही अगम देश कहलाता है और जो इस अनुभव को करता है वह सन्त सद्गुरु है और ऐसे पुरुष एक वक्त में कई हो सकते हैं।

मास्टर मोहन लाल :—इस अनुभव के आगे क्या है ?

मैं :—

सुरत हुई अतिकर मगनानी, पुरुष अनामी जाय समानी।
जहाँ पुरुष तहाँ कुछ नाहीं, कहे कबीर हम जाना।
जो कोई समझे सैन हमारो, पावे पद निरवाना॥

मास्टर मोहन लाल :—सन्त देता क्या है ?

मैं :— मुझे क्या पता ? स्वामी जी ने या सन्त कबीर ने या अन्य सन्तों ने किसीको क्या दिया मुझे क्या मालूम ? मुझे दाता दयाल जी महाराज के शुद्ध स्वरूप से जो मिला वह आपको बताता हूँ। संसार की क्षणभंगुरता के विश्वास से मेरी सुरत सांसारिक खेल में नहीं फँसती। मेरे मानसिक भाव, विचार आदि जो अन्तर में रूप-रंग धारण करके मेरी सुरत को खींचते थे अब नहीं खींचते।

सहस्रदल कमल छूटा, त्रिकुटी छूटी सुन्न महासुन्न भाग गये
भँवर गुफा के भँवर से निकला, यह सब खेल मन के थे॥

प्रकाश के समुद्र में रहकर, आत्मा जो आनन्द लेता था, वह भी समाप्त हो गया, क्योंकि उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए, समाधि में बैठकर सुमिरन ध्यान करना पड़ता था, जिसमें शारीरिक और मानसिक बल लगाना पड़ता है। अब क्या होता है ? अब तो तीनों प्रकार के बोधभानों को छोड़ने के लिए किसी सुमिरन, ध्यान या प्रयास की आवश्यकता नहीं रहती। बस, सहज रूप से सुरत ऊपर गई, एक सहज प्रकाश और सहज शब्द, जो

कि सुरत के साथ है, वह रहता है। वहाँ न यादे खुदा, न यादे दयाल, न शरीर, न मन, न कोई भाव या विचार शेष रहता है। अपने ही आप के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माहिं।
सुरत-शब्द मेला भया, सुख की हाजत नाहिं ॥
माला फेरूं न हरि भजूं, मुख से कहुँ न राम।
मेरा राम मुझ को भजे, तब पाऊं विश्राम ॥

मोहन लाल :—इससे लाभ क्या हुआ ?

मैं :—न कोई लाभ न कोई हानि। जीवन और अस्तित्व के खेल बन्द हुए। गुणों के खेल बन्द। न वर्तमान, न भूत, न भविष्य, न कुछ बना, न कुछ बिगड़ा। बस एक परमतत्त्व आधार है, जिसमें रहता हुआ विचरता रहता हूँ।

'इब्तदा जो थी हमारी, इन्तहा भी वह ही हुई।'

मोहन लाल :—और यह इब्तदा कब हुई थी ?

मैं :—जब सृष्टि की रचना हुई थी। स्वामी जी के शब्दों में

'काल रची त्रिलोकी सारी, दयाल रचा सतलोक सम्हारी।
तीन लोक काल का अस्थाना, चौथा लोक दयाल अस्थाना
काल दिया जीवन को धोखा, चौथे पद से सब को रोका।
दयाल पुरुष का भेद न दीन्हा, कर्मकाण्ड में जीव आधीना।
अपनी पूजा सब विधि गाई, जीव चले चौरासी भाई।
सन्त मता खुल कर अब गाऊँ, देकर कान सुनो समझाऊँ।
नहीं पाताल, नहीं मृत आकाशा, पाँच तत्त्व नहीं त्रिगुण स्वासा।
नहीं शिव शक्ति न पुरुष प्रकृति, ज्योति निरंजन नहीं प्रकृति।
तारा मण्डल न सूरज न चन्दा, पिण्ड ब्रह्माण्ड रचा नहीं अण्डा।
कर्म न शेष नहीं ओंकारा, माया ब्रह्म न ईश्वर धारा।
आत्म परमात्म नहीं दोऊ, सुन्न महासुन्न रचा न कोऊ।
अल्लाह खुदा रसूल न होते, पीर मुरीद न दादा पोते।
वेद पुरान न कुरान न कहते, मसजिद मुल्ला बांग न देते।'

कोई भी प्राणी, जब तक इस अन्तिम अवस्था अथवा निजघर तक नहीं पहुँचेगा, उसका आवागमन का सिलसिला समाप्त न होगा। गोपाल सहाय वर्मा ने ठीक ही कहा है कि एक समय में कई सद्गुरु हो सकते हैं। जिस व्यक्ति को जिसने भी वास्तविकता बता दी उसको निजघर पहुँचा दिया, वह ही उसके लिए सन्त सद्गुरु है मास्टर मोहन लाल! जो गुरु, सद्गुरु काम केवल अपनी प्रशंसा के लिए या डेरों के लिए करते हैं, वह सन्त सन्त सद्गुरु तो क्या साधारण सत्संगी भी नहीं हैं।

मोहन लाल :—महाराज जी ! गोपाल सहाय जी ने लिखा है कि जो व्यक्ति अपना तन, मन, धन समय के गुरु को अर्पण कर देता है, उसके सभी अपराध क्षमा कर दिये जाते हैं। क्या यह सत्य है ?

मैं :—हाँ, यह ठीक है। किन्तु तन, मन, धन अर्पण करने का मतलब लोग समझते नहीं। किसी सत्तगुरु के अतिरिक्त और कोई ऐसी शक्ति है ही नहीं, जो किसीका तन, मन तथा धन ले सके। संसार ने रहस्य को समझा नहीं वैसे :—

शिष्य को ऐसा चाहिए, गुरु को सब कुछ देय।
गुरु को ऐसा चाहिए, शिष्य का कछु न लेय ॥

सन्त सद्गुरु के दरबार में जो शिष्य सद्गुरु की वाणी को सुन-२ कर उस पर ध्यान करता है और गुरु की आज्ञा का पालन करता है, उससे उसकी सुरत स्वयं ही सांसारिक, शारीरिक और मानसिक सम्बन्धों से उपरामित हो जाती है। फिर उसमें तन, मन, धन का आकर्षण रहता ही नहीं। यही अभिप्राय है तन, मन, धन अर्पित करने का।

मनुष्य में त्रुटियाँ यह हैं कि वह अज्ञान के कारण

अपने शारीरिक और मानसिक सम्बन्धों को सत्य मानकर, उनको स्थिर रखने के लिए उचित या अनुचित काम करता है। सत्संग से जिज्ञासु को रहस्य मिल जाता है और वह कल्पित बन्धनों से निकल जाता है।

पहले पाप कमाय कर, बाँधी विष की पोट।
सकल पाप छिन में कटें, जब आये सतगुरु ओट ॥

सद्गुरु की ओट क्या है ? सद्गुरु की ओट का मतलब है गुरु की वाणी या वचनों को ध्यानपूर्वक सुनना, गुनना तथा उन पर अमल करना। जिनको बात समझ में आ जाती है, उनके लिए पाप-पुण्य, हानि-लाभ, जीवन-मरण, कर्म-धर्म का भ्रम समाप्त हो जाता है। किन्तु जिनके मन अभी शुद्ध नहीं हुए, उनके लिए बाहर की भक्ति सेवा इत्यादि के कर्म ज़रूरी हैं। हाँ मास्टर मोहन लाल ! मैं तुम्हें बता रहा था कि एक समय में कई सन्त सद्गुरु हो सकते हैं, क्योंकि सभी व्यक्तियों को जागृत करने वाला व्यक्ति उनके लिए सन्त सद्गुरु हैं। परन्तु वास्तव में सन्त सद्गुरु पृथ्वी पर बड़ी मुश्किल से अवतरित होता है। वह शिक्षा को युग के अनुकूल बदल जाता है, जिससे कि मानव-मात्र का कल्याण हो। यह समय की आवश्यकता का प्रश्न होता है। "जैसी माँग वैसी पूर्ति" इस समय मानवजाति घोर संकट, कष्ट और आपत्ति में है कोई न कोई उपाय अवश्य निकलेगा जो विश्व में शान्ति स्थापित करेगा।

अपने मन को शुद्ध रखो। आशावादी बनो "शुभ-संकल्पमस्तु" के अनुयायी बनो। अपने आदिस्वरूप प्रकाश और शब्द को अपना इष्ट बनाओ, जिससे कि तुम इस मन के चक्कर से निकल जाओ। जब तक मन के चक्कर में रहोगे आवागमन से छुटकारा नहीं हो सकता ! नहीं हो

सकता !! कबीर साहिब कहते हैं :—

मानव बन कर न मुआ, मरा तो डांगर ढोर।
एकहु जीव ठौर न लगा, लगा तो हाथी घोड़ ॥

दाता दयाल जी महाराज ने बार-२ यह कहा है प्रत्येक कार्य में पूरी तरह से "मनुष्य बनो"। मुझ पर गुरु का ऋण था। उन्होंने कहा था, "फकीर चोला छोड़ने से पहिले शिक्षा की प्रणाली को बदल जाना।" मैंने अपना कर्त्तव्य गुरु की आज्ञा के पालन करने से पूरा कर दिया। यदि सचमुच मौज ने मुझे जगत्-कल्याण करने के लिए भेजा है, तो वह समय निकट आ गया है, जब मानवता-प्रधान युग आयेगा। मानव जाति के अज्ञान तथा भ्रम दूर हो जायेंगे। हे दाता :—

दाता तेरे हुक्म की पालना कर डाली,
तू आप जगत् का है खुद माली।
भूल चूक हो माफ़ मेरी,
जो समझी वह बात कह डाली।
शब्द प्रकाश में दायमी बासा मिले,
यह मन का खेल मेरा खत्म हो।
दास फकीर यह अर्ज़ करे,
मालिक अपनी गोद में अब ले लो ॥

———

आस अब किसकी करूँ, अब दास तेरा हो गया।
मैं हुआ तेरा जो तू भी, स्वामी मेरा हो गया।
तू है मेरे साथ पल छिन, फिर क्यों हो चिन्ता कोई
मेरे घट में जब तेरे, रहने का डेरा हो गया।
हाथ जब तूने दया का, मेरे सर पर रख दिया।
मैंने समझा काल का सब, हेरा फेरा हो गया ॥

जग नहीं स्थिर न स्थिरता है, जग की वस्तु में ।
यह तो चिड़िया रैन का, सचमुच बसेरा हो गया ।।
राधास्वामी नाम का, सुमिरन है उठते बैठते ।
नाम भव के सिन्ध से, तरने का बेड़ा हो गया ।।

गुरु के चरणों में पड़ा जब, बन गया मेरा जन्म ।
बन गया, जब बन गया, फिर क्या बिगड़ेगा करम ।।
चलते फिरते जागते सोते, हो सुमिरन नाम का ।
यह धरम मेरा हुआ, अब धारूँ क्या दूजा धरम ।।
पोथियाँ मैंने पढ़ीं, निकला न उनसे कोई काम ।
गुरु की संगत पाई तो, फिर मिट गया मेरा भरम ।।
भूला भटका काल माया ने, किया मेरा अकाज ।
मिल गये सतगुरु तो फिर, सूझा ठिकाने का भरम ।।
धन्य सतगुरु राधास्वामी, धन्य महिमा आपकी ।
हो गया सुमिरन, भजन, और ध्यान ही मेरा नियम ।।

महात्मा गान्धी की अहिंसा

हज़ूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

यदि महात्मा गान्धी के दर्शन की एक शब्द में परिभाषा की जाय, तो वह शब्द होगा 'अहिंसा'। महात्मा गान्धी ने जिस व्यापक दृष्टि से 'अहिंसा' का प्रयोग किया है, उसके अनुसार, इसका अर्थ वह प्रेम है, जो मानव में उपस्थित विश्वव्यापी तत्त्व, आत्मा से उत्पन्न होता है। भारतीय दर्शन के इतिहास में, अहिंसा की धारणा कम से कम इतनी प्राचीन है, जितना कि वैदिक साहित्य।

वेदों में कहा गया है, "मा हिंस्याद् भूतानि" जिसका अर्थ है कि किसी भी जीव की हत्या मत करो। जैसे तीर्थङ्कर महावीर तथा बुद्ध दोनों ने अहिंसा को सत्य से भी अधिक ऊँचा माना। बुद्ध ने अहिंसा को विश्वव्यापी दया माना है। बुद्ध तथा महावीर दोनों ने अहिंसा को दु:ख से निवृत्ति पाने की दृष्टि से ही जीवन पर लागू करने का उपदेश दिया है और अहिंसा के सद्गुण को उन्होंने धर्म-निरपेक्ष स्वीकार नहीं किया। महात्मा गान्धी बुद्ध तथा महावीर की भाँति धार्मिक नेता नहीं थे, वह तो जनता के नेता थे। उनका उद्देश्य सांसारिक जीवन को आध्यात्मिक रंग देकर, स्वर्ग को पृथ्वी पर लाना था।

गान्धी जी ने अहिंसा के सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन पर लागू किया और उसे सत्य अथवा ईश्वर से एक मान कर अहिंसा की एक अत्यन्त व्यापक परिभाषा दी।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

अहिंसा जीवन की वह शैली है, जो कि आध्यात्मिक अनुभूति का साधन भी है और लक्ष्य भी। साधन इसलिये है कि वह विश्वव्यापी प्रेम, दया, सहानुभूति तथा न्याय की भावना को उत्पन्न करता है। वह लक्ष्य इसलिये है कि निरपेक्ष अहिंसा एक ऐसा उच्चतम आदर्श है, जिसकी प्राप्ति से मनुष्य ईश्वर बन जाता है।

गान्धी जी ने अहिंसा के अनुयायी के लिए सत्य, नम्रता सहिष्णुता तथा दया एवं प्रेम जैसे गुणों का अनुसरण करना अनिवार्य माना है। इसी प्रकार, अहिंसा का अर्थ, वह आत्मिक शक्ति है, जो मानवीय स्वभाव का आधारभूत नियम है और जिसकी अभिव्यक्ति सत्य, सहिष्णुता, नम्रता और प्रेम के गुणों के द्वारा होती है। अहिंसा उसी प्रकार मानवीय स्वभाव का नियम है, जिस प्रकार हिंसा बर्बरतता का। पशु में आत्मा स्वपित अवस्था में होती है और उसमें भौतिक शक्ति के अतिरिक्त और कोई ऐसा नियम नहीं होता, जिसे वह जान सके। परन्तु मनुष्य की श्रेष्ठता इसी में है वह आत्मा की शक्ति को जान सकता है। अहिंसा एक उच्चतम क्रियात्मक शक्ति है जो अन्तर में स्थित है।

अहिंसा का तत्त्वात्म आधार :

आम लोगों की यह धारणा है कि गान्धी जी ने नम्रता तथा सन्तोष के, ऐसे शान्तिवादी दर्शन का प्रचार किया, जिसके अनुसार यह सलाह दी जाती है कि यदि कोई व्यक्ति आपके बाँयें गाल पर थप्पड़ लगाये, तो उसको अपना दायाँ गाल भी थप्पड़ मारने वाले के सामने कर देना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि महात्मा गान्धी पर ईसाई मत का बहुत प्रभाव था और एक दृष्टि से एक सच्चे ईसाई की भाँति जीवन व्यतीत करते थे। किन्तु व्यावहारिक

दृष्टि से वह एक सन्त थे। उन्होंने अनुभव के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि जब अहिंसात्मक व्यवहार आत्मा से प्रेरित होता है, तो वह महान् शक्तिशाली शस्त्रों से भी प्रभावशाली होता है, क्योंकि वह आत्मा से उत्पन्न होता है, जो वास्तव में, केन्द्रस्थ सत्ता या केन्द्रस्थ सत्य है। यही कारण है कि उन्होंने अहिंसा, सत्य और विश्वव्यापी ईश्वर को एक माना है। ईश्वरप्राप्ति का एकमात्र साधन अहिंसा तथा प्रेम ही है। गान्धी जी ने ईश्वर के अस्तित्व में अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहा है, "विश्व में एक ऐसी रहस्यात्मक शक्ति है, जो सर्वव्यापी है। मैं उस उपस्थिति का अनुभव करता हूँ, यद्यपि मैं उसे आँखों से देख नहीं सकता। वह एक ऐसी अदृश्य शक्ति है, जो अपने आपको अनुभूत कराती है और वह सभी प्रकार के प्रमाणों से परे है। वह ऐसी सभी वस्तुओं से भिन्न है जिनका मैं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव करता हूँ। वह ज्ञानेन्द्रियों से परे है। किन्तु कुछ सीमा तक ईश्वर के अस्तित्व के प्रति तर्क प्रस्तुत करना सम्भव है। विश्व में एक क्रम अथवा व्यवस्था है। प्रत्येक वस्तु अथवा जीव पर नियन्त्रण रखने वाला एक अपरिवर्तन-शील नियम है जो अन्धा नहीं है। अतः वह नियम जो समस्त जीवन का नियन्त्रण करता है, ईश्वर है.......... मैं देखता हूँ कि यद्यपि मेरे चारों ओर सभी वस्तुएँ परिवर्तन-शील और नश्वर हैं, फिर भी सभी प्रकार के परिवर्तनों के पीछे एक ऐसी जीवनशक्ति है, जो अपरिवर्तशील है, जो सभी को धारण करने वाली है। जो सृजन करती है, अदृश्य हो जाती है और पुनः सृजन करती है वह व्यापक शक्ति अथवा आत्मा ईश्वर है। मृत्यु के बीच जीवत उपस्थित रहता है अतः मेरा यह मत है कि ईश्वर जीवन है सत्ता और प्रेम है। वह प्रेम है, वह परम शुभ है।

सत्य में अगाध निष्ठा के कारण गान्धी जी अहिंसा के पथ पर साहस और निर्भयता के साथ चले। उनके विचार में अहिंसा के रास्ते पर तब तक कोई नहीं चल सकता, जब तक कि उसमें अमरत्व और सत्य की सर्वव्याप्कता में निष्ठा न हो। अहिंसा का उपदेश मानवमात्र के कल्याण तथा विश्व में स्थायी शान्ति कायम कर सकता है।

अहिंसा तथा व्यक्ति :

गान्धी जी अपनी निष्ठा में दृढ़ थे। वह सभी वस्तुओं के प्रति अगाध प्रेम इसलिये रखते थे, क्योंकि वह जो कहते थे उसे करके दिखाना चाहते थे। गान्धी जी सत्य और ईश्वर को एक मानते थे और अहिंसा को जीवन में उतारने का अर्थ ईश्वरप्राप्ति है। गान्धी जी के शब्दों में, "मैं सत्य और अहिंसा के द्वारा अपने धर्म की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। मैं प्रायः अपने धर्म को सत्य का धर्म कहा करता हूँ। कुछ समय से 'ईश्वर सत्य है' कहने की अपेक्षा मैं यह कहने लगा हूँ "सत्य ईश्वर है" ताकि अपने धर्म की पूरी व्याख्या दे सकूं। एक समय था कि मैं ईश्वर के सहस्र नाम स्मरण किया करता था·········किन्तु आजकल मेरी ईश्वर की एकमात्र पूर्ण व्याख्या सत्य है। ईश्वर का अस्तित्व नहीं है, यह तो सुना जाता है किन्तु सत्य का अस्तित्व नहीं है, यह नहीं सुना जाता। मनुष्यों में मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी कुछ न कुछ सत्य लिये हुए है। हम सभी सत्य के शोले हैं।"

गान्धी जी के अनुसार, अहिंसा तथा प्रेम के मार्ग का उद्देश्य व्यक्तिगत आत्मा का विश्वव्यापी आत्मा तथा ईश्वर में विलीन हो जाना है। इस दृष्टिकोण को गान्धी जी के मृत्यु सम्बन्धी दृष्टिकोण से पुष्ट किया जा सकता है। एक

मित्र को उसकी बेटी की मृत्यु पर ढाड़स बन्धाते हुए उसे लिखा, "मैं तुम्हारी इस हानि पर शोक प्रकट करता हूँ, जो वास्तव में हानि नहीं है। मृत्यु तो केवल एक चिरनिद्रा तथा विस्मृति है। वह एक ऐसी मधुर निद्रा है, जिससे कि शरीर को फिर से जगाना नहीं पड़ता और स्मृति का मृतक भार सदा के लिए फेंक दिया जाता है। जब व्यक्तिगत बूँदें समुद्र में मिल जाती हैं, वह उस समुद्र की महत्ता धारण कर लेती हैं, जिनका कि वे अंग हैं।"

गान्धी जी ने मोक्ष की धारणा की व्याख्या कभी नहीं की, क्योंकि बुद्ध की भाँति उनका उद्देश्य भी तत्त्वात्मक व्याख्या न होकर, दु:ख का वास्तविक निवारण था, जिससे कि मानव का कल्याण हो। परन्तु इसमें तनिकमात्र भी सन्देह नहीं कि गान्धी जी शारीरिक मृत्यु के बाद आत्मा के अनन्त अस्तित्व में विश्वास रखते थे। उनका आचार-शास्त्र एक ओर तो आत्मा के अमरत्व की धारणा पर आधारित था और दूसरी ओर उसका उद्देश्य सान्त व्यक्तिगत आत्मा का अनन्त सत्य एवं ईश्वर से मिल जाना था।

आम तौर पर अहिंसा के मार्ग का उद्देश्य पारलौकिक प्रतीत होता है, किन्तु गान्धी जी कहा करते थे कि अहिंसा का व्यावहारिक उद्देश्य आत्मशुद्धि है। अहिंसा के पाँच लक्षण हैं :—

(1) अहिंसा में पूर्ण आत्मशुद्धि निहित है।
(2) मनुष्यों में उनकी योग्यता तथा शक्ति के अनुपात से अहिंसा की शक्ति उपस्थित होती है।
(3) अहिंसा सदैव हिंसा से श्रेष्ठ है।
(4) अहिंसा में पराजय नाम की वस्तु नहीं होती, जब कि हिंसा का अन्त सदैव पराजय होता है।
(5) अहिंसा का परम उद्देश्य निश्चित विजय होता है।

आत्मशुद्धि, जो कि अहिंसात्मक व्यवहार का मूल लक्षण है, अन्त में व्यक्ति के उस सन्तुलन और साम्य के स्तर पर पहुँचता है, जहाँ वह जय-पराजय के विरोध से ऊपर उठ जाता है। इसलिये व्यक्तित्व का आत्मिक विकास अहिंसा के मार्ग का उद्देश्य है। अहिंसा कमज़ोर तथा कायर व्यक्ति का काम नहीं है या मार्ग नहीं है, परन्तु वीर और साहसी व्यक्ति का काम है। अहिंसा व्यक्ति को शारीरिक मृत्यु के प्रति निर्भय और निश्चिन्त बना देती है। जब तक व्यक्ति में साहस न हो, वह अहिंसा के पथ पर चल ही नहीं सकता और जब तक वह अहिंसा के पथ पर चलने वाला तथा सत्यवादी नहीं होता वह आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। गान्धी जी ने आत्मसंयम को आत्मशुद्धि का साधन माना है।

अहिंसा का राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में स्थान :

गान्धी जी ने सदा इस बात पर बल दिया है कि अहिंसा का मार्ग केवल व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित नहीं है अपितु सत्य, अहिंसा सम्पन्न जीवन, मूलरूप में अपने साथियों की सेवा में संलग्न हो जाने का जीवन है। अहिंसात्मक व्यवहार का उद्देश्य, एक ओर तो आत्मशुद्धि है और दूसरी ओर सामाजिक कल्याण। गान्धी जी ने कहा है, "इस धर्म का सामाजिक अंग व्यक्ति के नित्य प्रति के जीवन में देखा जाता है। समाज-सेवा से कोई भी नहीं बच सकता। इसके बिना इस पृथ्वी पर अथवा इससे परे कहीं भी सुख नहीं है। इस योजना में, यानि कि समाज-सेवा की योजना में, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सेवा करना है, जहाँ कोई वस्तु ऊँची नहीं कोई वस्तु नीची नहीं। सत्य तो यह

है कि सब कुछ एक है, यद्यपि हम अनेक दिखाई देते हैं। आत्मानुभूति में आत्म-त्याग होता है। जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र अहिंसा पर चलने वाले हैं, उन्हें सम्मान के अतिरिक्त सब कुछ त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

अहिंसा की शैली दुःख सहन करने की शैली है। वह एक ओर तो आत्मशुद्धि की प्राप्ति के लिए और दूसरी ओर आततायी के दिल को बदलने के लिए, दुःख सहन करने की शैली है। गान्धी जी के अनुसार अहिंसा पर चलने के लिए निम्नलिखित छः नियमों का अनुसरण करना आवश्यक है :-

(1) अहिंसा विचारात्मक प्राणियों का ही नियम है, इसलिये वह उस पाशवी शक्ति से श्रेष्ठ है, जो कि जंगली पशुओं का नियम है। इस बात को सदा ध्यान में रखकर व्यवहार करना चाहिए।

(2) अहिंसा के पथ पर चलने वाले के लिए ईश्वर में अगाध विश्वास का होना आवश्यक है।

(3) अहिंसा को आत्मसम्मान का सबसे बड़ा रक्षक मानना चाहिए और उसे कदापि अपनी सम्पत्ति अथवा धन की रक्षा का साधन नहीं मानना चाहिए।

(4) अहिंसा में आत्मत्याग निहित है। इसलिये इसके अनुसार दूसरे लोगों तथा राष्ट्रों की सम्पत्ति का अपहरण करना अनैतिक कर्म माना जाना चाहिए।

(5) अहिंसा की शक्ति का प्रयोग बिना किसी जाति, वर्ण, धर्म, लिंग, राष्ट्र आयु के भेदभाव के करना चाहिए।

(6) प्रेम का नियम-अहिंसा, जो कि जीवन का नियम है सम्पूर्ण मानवता के लिए सयानरूप से प्रयोग में लाना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गान्धी जी की अहिंसा में

वर्गहीन समाज की धारणा निहित है। यदि प्रेम के नियम को व्यक्तिगत तथा समाज के जीवन में उतारा जाय, तो कोई कारण नहीं कि विश्व में मानवमात्र को स्थायी शान्ति प्राप्त नहीं हो। गान्धी जी ने कहा है, "हमारे सामने इस आधुनिक युग में ऐसे अनन्त उदाहरण देखने में आये हैं, जहाँ पर असम्भव दिखाई देने वाली बातें सम्भव हो गई हैं। बलिदान के बिना कोई वास्तविक लाभ नहीं हो सकता।" गान्धी जी ने प्रेम के नियम की सफलता को अपने व्यावहारिक जीवन में उतार कर सिद्ध किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब भी कोई व्यक्ति हिंसा को अपनाता है, उसका कारण होता है मानव के सम्मान में विश्वास को खो बैठना। जब तक विश्व में व्यवस्थित हिंसा और शस्त्रों की होड़ उपस्थित है, हम किसी भी प्रकार के मानववाद पर गर्व नहीं कर सकते। विश्व को आणविक आत्महत्या से बचाने के लिए अहिंसा को अपनाना बहुत ही ज़रूरी है। गान्धी जी ने 1936 में लिखा था, "यदि विश्व के प्रतिष्ठित नेता, जिनका विनाशी यन्त्रों पर आधिपत्य है, इन यन्त्रों का प्रयोग छोड़ दें तो स्थायी शान्ति सम्भव है।" परन्तु यह उस समय तक सम्भव नहीं, जब तक कि विश्व के शक्तिशाली राष्ट्र अपनी साम्राज्यवादी योजनाओं का पूर्णतया त्याग नहीं कर देते। यह त्याग उस समय तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि ये महान् राष्ट्र शस्त्रों की विनाशकारी होड़ में विश्वास रखना, अपनी इच्छाओं या आवश्यकताओं को बढ़ाने में रोक न लगाना इत्यादि को त्याग न दें।

गान्धीवाद व्यक्तिवाद तथा साम्यवाद दो कट्टर धारणाओं के बीच का स्वर्णमार्ग है। पूँजीवाद दूसरों के धन का उपयोग करता है, साम्यवाद व्यक्ति को सामाजिक

यन्त्र का एक पुर्ज़ा बना देता है, जिसमें न तो मानव की आत्मा का सम्मान होता है और न ही उसमें आधारभूत मानवीय अधिकारों का स्थान है। गान्धी जी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का मार्ग जाति, रंग, धर्म, राष्ट्रीयता तथा लिंग के कृत्रिम बन्धनों से ऊपर उठ कर भी जीवन के सभी क्षेत्रों में मानव के सम्मान को बनाये रखता है। जब तक लोग गान्धी जी की भाँति इस प्रेम तथा अहिंसा के मार्ग को अपने जीवन में नहीं उतारते, तब तक युद्ध और विनाश को रोका नहीं जा सकता। स्थायी शान्ति की सम्भावना में विश्वास न रखने का अर्थ है मानव के ईश्वरीय स्वभाव में विश्वास न रखना। मानवीय स्वभाव में शुभ की जन्मजात भावना को प्रेरित करना बहुत ज़रूरी है। आध्यात्मिक अनुशासन का मार्ग, एक ऐसा मार्ग है, जिसे सभी व्यक्ति, सभी समुदाय और सभी राष्ट्र अपना सकते हैं। यह प्रेम और शान्ति का सन्देश है, जो सन्देह तथा निराशा के अन्धकारमय समय में मानवमात्र की सुरक्षा की अन्तिम आशा है।

महात्मा गान्धी मानवमात्र से प्रेम करने वाले शान्ति तथा अहिंसा के प्रतीक थे। विश्व के इतिहास में कहीं भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जहाँ पर एक जीवित दार्शनिक से करोड़ों व्यक्ति सीधे प्रभावित हुए हों और सामूहिक रूप से आध्यात्मिक पथ पर निडर होकर बन्दूकों तथा तोपों का निहत्थे सामना करते हुए, जेलों में भयंकर दुःखों का सामना करते हुए और मृत्यु का हँसते-२ आलिंगन करते हुए चले हों, जैसे कि इस युग के महान् दार्शनिक और ऋषि महात्मा गान्धी के नेतृत्व में भारत में चले। महात्मा गान्धी न ही भारत के बल्कि पूरे विश्व के नेता थे।

महात्मा गान्धी महान् अशोक के बाद पहिले ऐसे

व्यक्ति थे, जिन्होंने अहिंसा को राजनीति पर लागू किया और भारत के स्वतन्त्रता संग्राम को आध्यात्मिक रूप दिया। सत्य तथा अहिंसा उनके दर्शन का सार है। उन्होंने सत्य तथा अहिंसा को भारतवासियों के व्यावहारिक जीवन में उतार कर सत्य का ईश्वर से तथा अहिंसा का प्रेम से तादात्म्य करके अध्यात्मवाद की सफलता का प्रमाण प्रस्तुत किया।

गान्धी जी का दर्शन केवलमात्र बौद्धिक अध्ययन नहीं है वह व्यावहारिक है। उनके दर्शन ने करोड़ों भारतीय लोगों को घोर निद्रा से बचाया और उन्हें निर्भीक बनाया, ताकि वह अहिंसा की विधि को अपना कर, सत्य के संग्राम में संघर्ष कर सकें। अहिंसा तथा सत्य का विशेषज्ञ होने के नाते, गान्धी ने युद्ध के स्थान पर नैतिकता का वास्तविक प्रमाण प्रस्तुत किया और विश्व को ऋणी बना दिया।

महात्मा गान्धी के जीवन का पूर्ण इतिहास सत्य के प्रति एक प्रयोग था जिसने अन्त में यह प्रमाणित किया कि सत्य की असत्य पर तथा प्रेम की हिंसा पर विजय होती है। उनकी अहिंसा में अगाध निष्ठा थी। उनके अनुयायियों ने बर्त्तानिया शासन के अत्याचार के विरुद्ध सत्याग्रह को अपनाकर अहिंसा की व्यावहारिकता को प्रमाणित कर दिया। सत्याग्रहियों के साहस का प्रदर्शन, जिन्होंने कि बर्त्तानिया के शासन द्वारा नमक बनाने के प्रतिबन्ध का 1930 में विरोध किया सहनशीलता तथा अहिंसा का राजनीति पर सफलतापूर्वक प्रयोग आधुनिक इतिहास का एक अद्वितीय उदाहरण है। उस समय लाखों भारतीय जेलों में डाल दिये गये और सहस्रों ने पुलिस के अत्याचारों को सहनशीलता से सहन किया।

इस आन्दोलन के समय 2500 स्वयंसेवकों ने श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा मणिलाल गान्धी के नेतृत्व में बम्बई के निकट एक अपूर्व साहस दिखलाया और पुलिस की लाठियों से बचने के लिए अंगुली तक नहीं उठाई। युनाइट प्रैस के एक विख्यात संवाददाता श्री वैब मिलर ने इस घटना की व्याख्या इन शब्दों में की :—

पूर्ण शान्ति के साथ, गान्धी के अनुयायी आगे बढ़े, और जंगले से एक सौ गज़ की दूरी पर रुक गये। उस समूह में से कुछ व्यक्ति पानी से भरे हुए खड्डों से गुज़रते हुए, कांटेदार तार वाले जंगले के निकट पहुँचे ······सहसा आदेश पाते ही बीसियों स्थानीय सिपाही आगे बढ़ते हुए सत्याग्रहियों पर टूट पड़े और उनके सिरों पर लोहे से मढ़ी हुई लाठियों की वर्षा की। सत्याग्रहियों में से किसी एक ने भी लाठियों के प्रहार से बचने के लिए अपना हाथ तक नहीं उठाया। वे घायल होकर गिर पड़े। जहाँ पर मैं खड़ा था, उस स्थान से मैंने अरक्षित खोपड़ियों पर डण्डों के पड़ने की आवाज़ सुनी। सत्याग्रहियों का यह झुण्ड लाठी के प्रत्येक प्रहार के दुःख को पीता चला जा रहा था। जिन व्यक्तियों पर लाठियाँ पड़ीं, वे लुढ़कते हुए अचेतन, टूटी हुई खोपड़ियों या टूटे हुए कन्धों के कारण कराहते हुए भूमि पर गिर पड़ते थे। बचे हुए सत्याग्राही पंक्तियों में चुपचाप, परन्तु दृढ़ता से, उस समय तक आगे बढ़ते चले जाते थे, जब तक कि वे प्रहार के कारण गिर न पड़ते।"

सहस्रों स्वयंसेवकों के सभी समूहों के साथ यही व्यवहार किया गया। सत्याग्रहियों की निडरता की मिसाल नहीं थी। प्रत्येक अपने देश के मान को सुरक्षित रखने के लिए और विश्व को यह दिखलाने के लिए कि घृणा का

घृणा के द्वारा नहीं, अपितु प्रेम के द्वारा उन्मूलन किया जा सकता है, मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तैयार था। इस निर्भीकता का उल्लंघन करते हुए श्री वैब मिलर लिखते हैं, "यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता था कि कुछ ही क्षणों में उसको लाठियों से मार कर गिरा दिया जायेगा, सम्भवतया जान से भी मार दिया जायेगा, फिर भी मुझे उनमें भय का कोई चिन्ह दिखाई नहीं दिया। उनको साहस दिलाने के लिए कोई संगीत नहीं था, न कोई तालियाँ बजा रहा था। पुलिस के सिपाही यन्त्रवत् दूर खड़े थे। उन्होंने दूसरे समूह को पीट कर नीचे गिरा दिया। कोई लड़ाई नहीं थी। कोई संघर्ष नहीं था। सत्याग्राही केवल आगे बढ़ते थे और पीट कर नीचे गिरा दिये जाते थे।

महात्मा गान्धी द्वारा चलाई गई रक्तहीन क्रान्ति उस विश्व के लिए प्रेम तथा भ्रातृभाव को सीखने का एक अद्वितीय उदाहरण था, जो कि घृणा के कारण छिन्न-भिन्न हो रहा है। गान्धी जी कदापि भारत के करोड़ों लोगों पर जादू के समान प्रभाव नहीं डाल सकते थे, यदि उन्होंने मानवमात्र के सच्चे प्रेमी का जीवन स्वयं नहीं व्यतीत किया होता। विख्यात वैज्ञानिक दार्शनिक अलबर्ट आइनस्टाइन (Albert Ainstein) ने गान्धी जी के सम्बन्ध में कहा है, "वह अपने लोगों के एक ऐसे नेता हैं, जिनके पास भौतिक सत्ता नहीं है.........एक ऐसे विजयी संघर्षकर्त्ता हैं जिन्होंने शक्ति के प्रयोग का तिरस्कार किया है। एक ऐसे ज्ञानवान् तथा विनम्र पुरुष हैं, जिनमें दृढ़ संकल्प है, जिन्होंने अपने लोगों के उत्थान के लिए अपनी समस्त शक्ति लगा दी है। वह ऐसे मानव हैं, जिन्होंने योरुप की दानवता का सम्मान के द्वारा सामना किया है। वह सदा के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित हो चुके हैं......भविष्य की पीढ़ियाँ सम्भवतया यह विश्वास

नहीं कर सकेंगी कि ऐसा व्यक्ति कभी जीवितरूप में इस पृथ्वी पर विचरता था।"

अलबर्ट आईनस्टाईन विश्वविख्यात वैज्ञानिक तथा दार्शनिक का यह कथन बिलकुल सत्य है, क्योंकि ऐसे महा-मानव विश्व में कभी-२ ही उत्पन्न होते हैं। गान्धी जी का जीवन तथा उनके कार्य सदा यह याद दिलाते रहेंगे कि अहिंसा का मार्ग साहसी तथा वीर व्यक्ति द्वारा ही अपनाया जा सकता है और वह केवल एक सिद्धान्त या अन्धविश्वास न होकर व्यावहारिक जीवन की एक शैली है।

लुई फिशर के शब्दों में, "गान्धी जी ने परमाणु की शक्ति में विश्वास न करके, उसे अस्वीकार करके, "सरमन औन दा मऊण्टन" के धार्मिक उपदेश को अच्छी तरह से समझा। यह परमाणु युग के एक शिशु थे परन्तु नैतिकता की एक महान् मूर्ति। बीसवीं सदी में भी वह हिंसा के विषय में कुछ नहीं जानते थे। परन्तु जीवन के विषय में सब कुछ जानते थे।"

महात्मा गान्धी निश्चितरूप से यह मानते थे कि घृणा पर विजय घृणा नहीं, अपितु केवल प्रेम ही पा सकता है। अणुबम के प्रयोग पर अपने विचार प्रकट करते हुए गान्धी जी ने 1946 में कहा, "अणुबम द्वारा घटित महान् दुःखद घटना से हमें यह शिक्षा मिलती है कि अणुबम का विनाश अन्य बमों द्वारा नहीं होगा, जिस प्रकार कि हिंसा का प्रती-कार हिंसा नहीं है। मानवमात्र को केवल अहिंसा के द्वारा ही हिंसा से बाहर निकलना होगा। घृणा पर विजय केवल प्रेम ही पा सकता है।"

पुष्प नं० 1

मन को मारना, स्थिर करना, या रोकना

लेखक :

श्री गोपी लाल कृषक उर्फ दयाला नन्द जी महाराज
खंडेहा, ज़िला अलीगढ़।

इस विषय पर श्री कबीर साहिब की पहेली पर श्री हजूर परम दयाल जी ने 25 अक्तूबर 1973 के प्रवचन में बहुत कुछ व्याख्या की है। उसमें तर्क-वितर्क के ख्याल से नहीं बल्कि यह जानने के लिए कि इस बाबत में जो कुछ मैंने समझा है वो कहाँ तक सही या ग़लत है, कुछ नीचे लिखी हुई बातों को लिखने का साहस कर रहा हूँ। शास्त्रों में जड़ पदार्थ की व्याख्या इस तरह दी है :—

1. मन जड़ पदार्थ है चेतन नहीं, जो पदार्थ अपनी सत्ता से अपने आपको प्रकाशित न कर सके यानि ज़हूर में न ला सके वो जड़ है और मैं इससे पूरी तरह सहमत हूँ कि हमारा मन उसमें सुरत या तवज्जह ध्यानशक्ति के आये बिना हलचल नहीं कर सकता है। जैसे :—

पर सत्ता आये बिना, मनुवा करे न काम।
ज्यों बिजली आये बिन, बल्ब रहे बेकाम॥

इस कथन की पुष्टि में हमारी गहरी नींद अथवा सुषुप्ति की मिसाल दी जा सकती है, जब कि हमारी सुरत

कुदरतन दसवें द्वार के आगे यानि महासुन्न में पहुँच जाती है। अगर मन में कोई अपनी शक्ति होती तो मन को इस दशा में भी खटपट करनी चाहिए थी। किन्तु वह ऐसा नहीं करता है।

मन और सुरत का भेद।

हमारे शरीर में वैसी ही जैसी कि संसार में होती हैं अनगिनत शक्तियाँ हैं जिसमें से एक सुरत दूसरा मन खास माने रखता है। पर इन दोनों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। मन के सुपुर्द कुदरत ने इतने काम कर रखे हैं, जैसे कि हमारे शरीर की रचना करना व ज्ञानेन्द्रियों द्वारा महसूस करके मन के स्वाभाविक गुण काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की प्रेरणा देकर अपना कर्त्तव्य कर्म निर्णय कराने के लिए हाँ और ना दोनों पक्षों की ओर से जजरूपी बुद्धि के सामने मुकद्दमा पेश कर दोनों पक्षों की ओर से वकालत करना तथा बुद्धि के निर्णय दे देने पर उस कर्म को ज्ञान व कर्म-इन्द्रियों द्वारा करवा देना तथा उसके फल को देखकर दु:खी होना या सुखी होना तथा स्थूल शरीर की हालतों की सूचना सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर और महा-कारण शरीर तक पहुँचाना और उन शरीरों की अवस्था की सूचना स्थूल शरीर को देना तथा मन अनुकूल या प्रतिकूल संसार को देखकर दु:खी और सुखी होना तथा ज़िन्दगी कायम रखने के लिए संसार में संघर्ष करके ज़रूरी सामान जुटाना और जुटाने का ज्ञान प्राप्त करना तथा इसकी रक्षा करना। वगैराह-वगैराह।

इसलिये जब हमारी सुरत मन के दायरे में आकर उसे कार्यशील बनाती है तो हमारा मन ऊपर लिखे कार्यों में लिप्त होकर डावाँडोल अथवा चंचल हो उठता है अथवा एक जगह नहीं ठहरता है। तभी तो कुछ थोड़े से महापुरुषों

को छोड़ संसार के सभी वर्गों के लोगों की यह शिकायत हमेशा बनी रहती है कि 'मन चंचल कहा न माने रे मैं कौन उपाय करूँ', जब कि सुरत एक समय में दो जगह कभी नहीं रह सकती। यह सुरत का स्वाभाविक गुण है और दूसरा स्वाभाविक गुण यह है वो शब्द और प्रकाश तथा रूप की ओर खिंचती रहती है और तीसरा मुख्य सुरत का गुण यह है कि जहाँ जितनी देर वो जम जाती है वहाँ उतनी ही देर को उसी का स्वरूप बन जाती है। अगर मैं ग़लती नहीं करता तो सन्तों ने सुरत के इन्हीं स्वाभाविक गुणों को व स्वरूपों को समझ करके सन्तमत की नींव डाली है और मन से सुरत को निकाल कर मन को बेकार करने के लिए ही गुरुमूर्ति का ध्यान करने का साधन बतलाया है कि 'ध्यानमूलम गुरोर्मूर्तिः'। मन को क्रियाहीन बनाने के लिए यानि उसकी चंचलता हरने के लिए ज़रूरी है कि सुरत को किसी दूसरे केन्द्र पर जमाया जाय जैसे कि हम किसी बच्चे के गिर जाने पर जो उसकी सुरत दुःख महसूस कर रही है कोई अच्छा खिलौना दिला कर या सांकल बजा कर या चन्दा बाबा दिखा कर उसके दुःखी मन से सुरत को हटा कर उसका दुःख भुला देते हैं अथवा उस लड़के के मन को बेकार बना देते हैं। शायद इस मन की बेकारी को ही लोग मन को रोकना, वश में करना या एकाग्र करना कह देते हैं जबै कि वास्तव में इकट्ठी होती सुरत किसी रूप या शब्द में और शायद इसीलिये सार वचन में लिखा है :—

गुरु राखो हिरदे माहीं।
तो मिटे काल परछाहीं॥

काल की परछाईं है मोटी माया अथवा स्थूल जगत् और झीनी माया यानि ख्याल की दुनिया। इसलिये मैं तो अपने लिए व दूसरों के लिए मन की चंचलता को दूर करने

के लिए गुरुमूर्ति का ध्यान सबसे उत्तम समझता हूँ। आजकल के एक शायर ने भी कहा है :—

चिन्ताएँ जब तुम्हें सतायें एक काम क्यों नहीं करता।
चिंता से चिंता को काट दे गुरु के चिन्तन में लग जा॥

पुष्प नं० 2

कथनी, करनी व रहनी

कबीर साहिब की बाणी है कि :—

ज्ञान समझना और है, करनी रहनी और।
जाकी रहनी बन गई, लगे ठिकाने ठौर॥
करनी करे सो पूत हमारा, कथनी कथे सो नाती।
रहनी रहे सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी।

हम यानि हमारी सुरत अनामी धाम से आई है और वह तभी अनामी धाम वापिस जा सकती है जब कि हम अपनी रहनी ठीक-ठीक बना लेते हैं। रहनी के चार अंग यानि पाये हैं। अगर एक भी अंग भंग रहता है तो कहा जायेगा कि रहनी में कमी रह गई है। ऐसी लंगड़ी रहने वाली सुरत अनामी धाम नहीं पहुँच सकती है।

रहनी के चार अंग इस प्रकार हैं :—

1. तन का सुख। 2. मन का सुख। 3. आत्मानन्द 4. जीवन्मुक्त अवस्था यानि ज़िन्दगी को ऐसे ढंग से बिताना कि तन का सुख मिले, मन का भी सुख मिले, आत्मानन्द मिले, जीवन्मुक्त अवस्था भी प्राप्त हो।

1. तन का सुख :—सभी चाहते हैं चाहे कोई साधक हो, सन्त हो, गरीब हो, अमीर हो, विद्वान् हो, मूर्ख हो,

कोई भी हाथ उठाकर कह नहीं सकता कि उसे तन का सुख नहीं चाहिए। तन का सुख पाने के लिए ज़िन्दगी भर संसार से सम्बन्ध कायम रखना पड़ता है। क्योंकि तन के सुख की सामग्री संसार में जहाँ बिखरी हुई होती है और उसे इकट्ठा करने के लिए तरह-तरह के धन्धे जैसे खेती, व्यापार, नौकरी वगैरह करने पड़ते हैं। जो मनुष्य जितना ही ज्यादा व्यापारकुशल व व्यवहार कुशल होता है उतनी ही ज्यादा तन के सुख की सामग्री इकट्ठी कर सकता है।

व्यापार कुशल, व्यवहार कुशल, नर जग में रह सुख पाते हैं।
ममता से हीन मनुज, नित नये नये दुःख उठाते हैं॥

2. मन का सुख :—तन का सुख पाने के लिए मनुष्य संसार में विचरता हुआ अथवा संघर्ष करता हुआ तन का सुख तो पा जाता है परन्तु मन का सुख खो बैठता है और संसार में बसने वाली चिंताओं का शिकार हो जाता है और ये चिंताएँ मन के भारी दुःख का कारण बन जाती हैं अथवा इन चिंताओं के कारण संसार में विचरने वाले सन्त लोग भी व्याकुल होकर गले का फंदा समझने व कहने लगते हैं। कबीर साहिब संसार में यानि माया में विचरते हुए कहते हैं :—

कबीर माया पापिनी, फन्द ले बैठी हाट।

यानि इस माया या संसार की हाट में चिन्ताओं के फन्दे ही फन्दे हैं। बस इस हाट पर जो भी गया उसके गले में चिन्ता का फन्दा पड़े बिना नहीं रहता जैसा कि :—

काजल की कोठरी में, कैसऊ चतुर घुसे।
एक रेख काजल की लागे, फिर लागे रे॥

ऐसे ही :—

चिन्ताओं के समुद्र में कैसोऊ अचिन्त घुसे।
एक चोट चिन्ता की लागे फिर लागे रे॥

तो अब बड़ी मुश्किल अटकी कि संसार में बिना संघर्ष किये तन का सुख मिले नहीं और संसार में संघर्ष करने से चिन्ता जो कि मन का भारी दुःख है मन के गले पड़े बिना रहे नहीं। तो अब क्या किया जाय जो तन के साथ-साथ मन का सुख मिले।

कबीर साहिब ने अगली कड़ी में कहा है :—

सब जग तो फन्दे पड़ा, गया कबीरा काट।

आइये देखें कबीर साहिब ने क्या युक्ति अपनाई कि गृहस्थ यानि संसार में रहते हुए भी चिन्ताओं से मुक्त रहते थे। उस युक्ति को खुद बयान करते हैं कि :—

जाके मन विश्वास है सदा गुरु है संग।
कोटी काल झकझोरिए तऊ न मन होय भंग॥

साथ ही कहते हैं कि :—

गुरुमुख गुरु चितवन रहे जैसे मणि भुजंग।
एक पलक बिसरे नहीं यही गुरुमुख का अंग॥

यानि वो गुरुमुख भक्त जो सुमिरन, ध्यान का साधन कर गुरु की मूर्ति को अपनी खोपड़ी में त्रिकुटी के स्थान पर जमाकर संसार में विचरते हैं उनको चिन्ताएँ तो अवश्य आयेंगी पर चिन्ताओं के प्रभाव से बच जायेंगे। जैसे कि जहाँ गुरुरूपी शेर बैठ जाता है वहाँ से सभी चिन्तारूपी जानवर किनारा कर जाते हैं। जिसकी पुष्टि राधास्वामी सार वचन में की गई है कि :—

गुरु राखा हिरदे माहीं, तो मिटे काल परछाहीं।

यानि ऐसे गुरुभक्त को जिनकी खोपड़ी में गुरु बैठा रहता है वे चिन्ताओं के समुद्र संसार में विचरते हुए अथवा संघर्ष करते हुए चिन्ताओं के प्रभाव से मुक्त रहते हुए तन

के सुख के साथ-साथ मन का सुख जो रहनी का दूसरा अंग है आसानी से प्राप्त कर लेते हैं।

3. रहनी का तीसरा अंग आत्मानन्द पाने के लिए जो कि दसवें द्वार से आगे यानि महासुन्न से आगे मिलता है, हिन्दु-शास्त्रों में कई युक्तियाँ बताई गई हैं : जैसे हठ योग, वेदान्त मार्ग या विचार योर, सांख्य योग वगैरह-वगैरह जिनका कि मैंने अपनी जिन्दगी में अमल करके देखा है और जो उससे अनुभव किया है उसके आधार पर मैं कहने को विवश हूँ कि आजकल के युग में ऊपर लिखे हुए योगों को गृहस्थ में रहकर सिद्ध नहीं किया जा सकता बल्कि इन योगों का साधन करने वाले लोग तरह-तरह के रोगों व सोगों के शिकार बन जाते हैं। सुरत-शब्द योग द्वारा जिसका ज़िकर किया जायेगा आत्मानन्द शीघ्र व सहज भी मिल जाता है और इसका साधन करने वाला आगे साधन कर जीवन्मुक्त अवस्था को जो कि करनी का चौथा अंग है, प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। रहनी का चौथा अंग जीवन्मुक्त अवस्था है।

4. जीवन्मुक्त अवस्था :—

इस अवस्था का समझना और समझाना अत्यन्त कठिन काम है। क्योंकि यह अवस्था बुद्धिगम्य नहीं है किन्तु यह सुरत से ही अनुभव की जा सकती है और केवल उस सुरत (ज़ीव) को ही प्राप्त हो सकती है जिसको कि जन्म-मरण से बचने की उत्कृष्ट अभिलाषा हो और साथ ही उसको ऐसा पूर्ण सद्गुरु प्राप्त हो जो कि जीवन्मुक्त अवस्था में रहता हो। मेरे अब तक के अनुभव के अनुसार वर्तमान समय में केवल नाम की भक्ति या सुरत-शब्द योग के, जिसका इस लेखमाला के चौथे पुष्प में पूरी तरह वर्णन किया जायेगा, पूर्ण हो जाने पर ही प्राप्त हो सकती है

अथवा सुरत-शब्द योग का साधन करने वाला जब सोपान दर-सोपानों के शब्दों को सुनता हुआ प्रकाश को देखता-हुआ सबसे ऊँचे सोपान के एक लय वाला एक शब्द जिसको सार शब्द या बोल कहा जाता है सुनते-२ अशब्द गति को प्राप्त हो जाता है। जिस के प्राप्त होने पर अपने आप का व अनामी पुरुष व माया का पूरी तरह अनुभव हो जाता है और फिर अशब्द गति से उत्थान होने पर सतपद में रहता हो अथवा अलख अगम के निर्मल प्रकाश को देखने व सार शब्द के सुनने का अभ्यास करता रहता हो और अपना जीवन पूर्ण वैरागी होकर काटता हो या पूरी तरह फारगुल-वाल होकर गृहस्थ में रहकर काटता हो। आजकल के ज़माने में पूरा वैरागी होना तो असम्भव सा प्रतीत होता है या यों कहिये कि मैं पूरा वैरागी न हो सका तो मुझ पर तो कुलमालिक की दया से और अपनी सन्तानों के सद्भाव से व सहयोग से फारगुलबाली का जीवन गृहस्थ में रहकर बिता रहा हूँ और यह भी पूरी तरह समझ में आ गया है कि फारगुलबाली का जीवन बिताने के लिए गृहस्थ में रहना बहुत ठीक है। यह भी पूरी तरह समझ में आ गया है कि फारगुलबाली होकर जीवन बिताने के लिए गृहस्थ में रहकर सुमिरन, ध्यान, भजन करते रहना और ज़माने के अनुसार उचित मात्रा में सन्तान पैदा करना व उनको अपनी रोटी आप कमाने योग्य बनाना तथा सद्गुरु की भक्ति सिखाना अत्यन्त आवश्यक है।

जीवन्मुक्त अवस्था में रहने वाली सुरत के साथ जब तक यह चोला (शरीर) जिसमें मन और उसके साथी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार बसे हुए हैं कभी-२ ऐसे ख्यालात उठते हैं कि इस अवस्था से पतन सा हुआ महसूस होता है। निज अनुभव के आधार पर जब मैं इस अवस्था यानि

जीवन्मुक्त अवस्था में होता हूं. कभी-२ बहुत गन्दे विचार यानि गुनावन उठते रहते हैं. जिनको कि उठना नहीं चाहिए। ऐसी अवस्था. में तो अपने आपको शब्दस्वरूपी गुरु: सारशब्द: के, जो कि सारे विश्व की रचना व पालन-पोषण करने व रक्षा करने का आधार है, के शरणागत कर देता हूँ और वो शब्दस्वरूपी गुरु मेरी रक्षा करता है व करता रहा है। आगे मौज मौज मौज। इसलिये सन्तों ने कहा है कि "सन्त तब तक भय करे जब तक पिंजर साथ" और यह भी कहा है कि :—

कंचन तजना सहज हैं सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्षा, तजना मुश्किल येह ।।

जीवन्मुक्त अवस्था में रहने वाले व्यक्ति का जीवन-निर्वाह का काम मौज से कुदरतन होता रहता है। उसकी कामना या वासना स्वयं कम हो जाती है या क्षीण होती रहती है। एक समय था जब मुझे पुस्तकों से यह ज्ञान मिला था कि मनुष्य को मुक्ति, जिस को पाने का मैं बचपन से ही अभिलाषी था, को प्राप्त करने के लिए वासनाओं अथवा कामनाओं से रहित होना आवश्यक है। मैं बहुत कोशिश करने पर भी, शायद गृहस्थ में रहने के कारण वासना, कामना रहित नहीं हो सका और निराशा का मुंह देखना पड़ा। मौज के अधीन एक दिन मैंने अपने सद्गुरु परम दयाल जी महाराज को यह फरमाते हुए सुना कि :—

जहाँ काम तहाँ नाम ना, जहाँ नाम नहीं काम।
रवि रजनी, दोनों जने, रहें न एकई ठाम ।।

इन वचनों को सुनकर मैं गदगद हो गया और ख्याल पकाया कि जब हम वासना (कामना) रहित नहीं हो सकते तो नाम की भक्ति को ही पूर्ण करना चाहिए जिसके पूर्ण

होने से कामनाओं व वासनाओं से स्वतः ही बचा जा सकता है। यानि जहाँ नाम तहाँ नहीं काम। और फिर बल नाम की भक्ति या सुरत-शब्द योग, जिसका वर्णन अगले पुष्प में किया गया है, पर ही लगाना चाहिए और लगाया। अपने सतगुरु की दया से सोपान-दर-सोपान सुरत को चढ़ाने पर अशब्द गति अन्तिम अवस्था प्राप्त की और अपने आप को व अपनी ज़ात को पहिचाना अथवा अनुभव किया। परन्तु इस अवस्था में जो कि अपने जीवन में कई बार आई है, मैं ठहर नहीं पाता। जब वहाँ से उत्थान होता है तो सार शब्द (शब्द ब्रह्म) में आता हूँ और इस शब्द का व निर्मल प्रकाश का अधिकतर साधन करता रहता हूँ अथवा कहिये कि सतपद में रहता हूँ। इस अवस्था को ही सन्तों ने जीवन्मुक्त अवस्था कहा है। अपने निजी अनुभव के अनुसार मैं लिखने को मजबूर हूँ कि इस अवस्था में रहते हुए कभी-२ या तो इसलिये कि अपने पिछले जन्म के कर्मों के अनुसार या सतगुरु आज्ञापालन अनुसार किसी का लेना-देना बाकी है, अक्सर शुभकामनाएँ व कभी-२ अशुभ कामनाएँ भी उठती रहती हैं। उसके असर से बचने के लिए मैं अपने इष्टदेव तथा बाहरी गुरु और सार शब्द (शब्द ब्रह्म) अथवा अन्तरी सतगुरु के शरणागत होकर प्रार्थना करता रहता हूँ और निष्काम भाव से उस कामना से बचने की पूरी कोशिश करता रहता हूँ।

नोट :—नाम की भक्ति की पूरी व्याख्या के लिए देखिये पुष्प नं० 4 अशब्द गति, जिसका कि ऊपर वर्णन किया गया है, अन्तिम अवस्था है, परन्तु वह साधन से प्राप्त नहीं होती। साधन से सुरत सार शब्द तक पहुँच सकती है वहाँ से आगे अशब्द गति में पहुँचना आदिकर्त्ता की दया पर निर्भर करता है, ऐसा मेरा निजी अनुभव है,

जो कि सन्तों की वाणियों से मेल खाता है। सन्त कहते हैं :—

जा पर दया आदि कर्त्ता की वह यह न्यामत पावें।

मैं ऐसा लिखने पर क्यों मजबूर हुआ ? इसलिये कि जब-२ मैंने इस अशब्द गति को साधन द्वारा प्राप्त करने के लिए साधन किया उस दिन वह अशब्द गति नहीं आई और यह अवस्था प्राप्त हुई कि :—

सहज ही धुन होत है, अपने घट के माहिं।
सुरति शब्द मेला भया, मुख को हाजत नाहिं ॥

वहाँ से आगे क्या होता है ? सार बचन में लिखा हैं :--

सुरत समानी शब्द में, ताहि काल न खाय।

इसके आगे सार बचन में लिखा है :--

सुरत हुई अधिकतर मगनानी।
पुरुष अनामी जाय समानी ॥

अनामी पुरुष में समा जाने वाली अवस्था अशब्द गति आ जाने पर प्राप्त हो जाती है और इस अवस्था में इस बात का पूरा पता तो लग जाता है कि वह और मैं क्या हैं। पर कोई वहाँ हमेशा ठहर नहीं सकता। इसलिये सार शब्द सुनते हुए जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इस आशा पर कि शरीर त्यागते वक्त यह शब्द सुनाई दे तो फिर जन्म-मरण से छुटकारा मिल जाता है।

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्‌गुरु हज़ूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

25 फरवरी से 11 मार्च तक हम मानवता मन्दिर होशियारपुर में रहे और इस दौरान में एक साप्ताहिक सत्संग हुआ और 11 मार्च को मासिक सत्संग आयोजित हुआ जिसमें हमेशा की भाँति बाहर से आने वाले सत्संगियों ने काफी संख्या में भाग लिया। 12 मार्च को प्रातःकाल रवाना होकर उसी रात को हम मेरठ पहुँचे और डिफैन्स कालोनी में श्री ब्रह्म सिंह जी के निवासस्थान पर निवास किया। दूसरे दिन प्रातःकाल एक विशाल सत्संग आयोजित हुआ। मेरठ, बनवारीपुर, खतौली और आस-पास के इलाकों से बहुत से सत्संगी बड़े उत्साह से इस सत्संग में शामिल हुए। मैं आपको पहिले बता चुका हूँ कि श्री ब्रह्म सिंह जी का परिवार, उनके सुपुत्र उनके दामाद तथा सभी निकटवर्ती सत्संगी पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से मानव धर्म एवं राधा-स्वामी मत के अनुयायी हैं। जब भी हम उनके यहाँ जाते हैं सभी घर वाले सेवा में और सत्संग के प्रबन्ध में जुट जाते हैं। सत्संग के तुरन्त बाद भण्डारा हुआ और हम अलीगढ़ के लिए रवाना होने से पहिले थोड़े समय के लिए बनवारी-

पुर, श्री जय चन्द त्यागी के भाई श्री महेश चन्द्र त्यागी की दुकान का उद्घाटन करने के लिए गये। मेरठ से ही श्री ब्रह्म सिंह जी की सम्बन्धी एक महिला तथा उनकी सुपुत्री हापुड़ तक हमारे साथ गईं। इन्होंने कई बार कहा था कि हापुड़ से 4 कि० मी० दूर बुलन्दशहर रोड पर उनकी बहुत बड़ी ज़मीन है और उसमें से कुछ भाग वह मानवता मन्दिर के लिए केन्द्र स्थापित करने के लिए देना चाहती हैं।

सायंकाल करीब 4 बजे हम उनके फार्म पर पहुँच गये। उन्होंने हमें अपनी ज़मीन दिखाई। उनकी ज़मीन के साथ-२ कोई एक कि० मी० दूर एक मान्यताप्राप्त हाई स्कूल भी चल रहा है। उस स्कूल के साथ काफी उपजाऊ भूमि भी है। उस महिला के पति उस स्कूल की मैनेजिंग कमेटी के अध्यक्ष भी हैं। उन्होंने मुझे कहा कि यदि हम चाहें, तो स्कूल को भी हम मानवता मन्दिर के तत्त्वावधान में चला सकते हैं। दोनों स्थान बहुत अच्छे हैं और मुख्य सड़क के ऊपर हैं। यदि मेरठ, वनवारीपुर और बुलन्दशहर आदि के सत्संगी इस कार्यभार को लेने के लिए उत्सुक होंगे, तो सम्भवतया यह केन्द्र और स्कूल मानवता मन्दिर के तत्त्वावधान में चलाया जा सकता है। हापुड़ से अलीगढ़ जाते-२ काफी समय हो गया था, इसलिये हम करीब 9 बजे रात्रि को बुलन्दशहर पहुँचे और वहाँ के सत्संगियों के आग्रह से वहीं पर विश्राम किया क्योंकि दूसरे दिन प्रातःकाल वहीं पर हमारी बहुत ही श्रद्धालु और दृढ़ विश्वास वाली सत्संगिन श्रीमती कौशल के नये घर का गृह-प्रवेश आयोजित था। इस उत्सव पर सैकड़ों सत्संगी शामिल हुए और श्रीमती कौशल ने सत्संग के बाद सबको प्रीतिभोज दिया। ऐसे श्रद्धालु सत्संगी न केवल अपना जन्म सुधार लेते हैं, बल्कि

दूसरों को भी मानवता धर्म पर चलने की प्रेरणा देते हैं। मैं आपको सत्संगों में, लेखों में एवं मासिक सन्देशों में, सरल भाषा में यह बताने की कोशिश करता रहता हूँ कि मानवता धर्म एवं राधास्वामी मत का सार क्या है और वह किस प्रकार सत सनातन धर्म के विकास की आखिरी सीढ़ी है। इस दृष्टि से एक सच्चा राधास्वामी मत का अनुयायी किसी भी धर्म का विरोध नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि परमतत्त्व राधास्वामी दयाल का अपना कोई विशेष रूप नहीं है और वह सभी रूप उसी सर्वाधार के हैं, जिसकी खोज में सभी धर्म, सभी दर्शन, सभी मत-मतान्तर और योग निरन्तर लगे हुए हैं। वास्तव में वह परमतत्त्व कण-२ में मौजूद है और जगत् में जड़ और चेतन, स्थूल पदार्थ, वनस्पति, पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता सभी में उसी की झलक है और उसी की शक्ति, उन सबका पोषण कर रही है। उसी मालिक का दिव्य प्रकाश सभी वस्तुओं के अन्दर मौजूद है और उसका विश्वव्यापी शब्द सभी में गुँजायमान हुआ है। उस मालिक को प्यार करने के लिए, हमें उसकी व्यापकता को मानते हुए और माया तथा जगत् को उसी का रूप स्वीकार करते हुए, किसी भी वस्तु से नफरत नहीं करनी चाहिए। हमें यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि यदि हम प्रेम और भक्ति की दृष्टि को अपनायें तो हम उस मालिकेकुल का दर्शन हर समय और हर स्थान पर कर सकते हैं। दाता दयाल जी महाराज ने इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा है :—

जहाँ आँख खोली वहीं तुझको पाया।
कहीं ज्योति था तू कहीं था तू छाया॥
कमल है कमल का बना रूप तुझसे।
हुआ भँवरा और बास तू लेने आया॥

पवन है आकाश आग मिट्टी है पानी।
तू है सब कुछ और सब में है छाया ॥
कहीं होके परगट दिया सबको दर्शन।
कहीं छुप गया छुप के छबि को छुपाया ॥
छुपा आग के रूप चकमक में बैठा ।
हरी मेंहदी में लाली का रंग लाया ॥
जिधर देखता हूँ तुझे देखता हूँ ।
मेरी दृष्टि में आप तू ब्रह्म माया ॥
दया राधास्वामी की मुझ पर हुई अब।
परम सन्त औतार धरकर चिताया ॥

यह शब्द बिलकुल स्पष्ट है और मानवता धर्म का आधार है। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि हमारे सत्संगी व्यापक प्रेम को अपने जीवन में लागू कर रहे हैं। पराप्रेम और पराभक्ति का राधास्वामी मार्ग बहुत जल्दी धर्मों के भेदभाव को मिटाकर मानवतावाद को एक व्यापक, सर्वप्रिय जीवनशैली बना देगा। यह मेरी ही आकांक्षा नहीं है बल्कि उसी परमतत्त्वाधार राधास्वामी की मौज है, जिसके बारे में ऊपर दिये गये शब्द में दाता दयाल जी महाराज ने कहा है :--

दया राधास्वामी की मुझ पर हुई अब।
परमसन्त औतार धर कर चिताया ॥

यही परमसन्त अवतार सद्गुरु वक्त होता है। जो अपने से पहले सद्गुरु वक्त की आज्ञा से अपने अनुभव को बाँटता है और आयुपर्यन्त सत्संग द्वारा, सत्संगियों की सेवा करता रहता है। मैं आपको बता रहा था कि 13 मार्च को श्रीमती कौशल के घर, जो मानवता धर्म की एक आदर्श सत्संगिन है, सत्संग के बाद भण्डारा हुआ। हम उसी दिन सायंकाल अलीगढ़ के लिए रवाना हो गये। और करीब सात बजे साय

मेजर सोमदत्त जी के निवासस्थान पर पहुँच गये। वहाँ पहिले से ही बहुत से सत्संगी प्रतीक्षा कर रहे थे। इन सबसे मिलने के बाद और भोजन के बाद हमने रात्रि का विश्राम किया। 14 और 15 को सत्संगों में सत्संगियों की बहुत अधिक संख्या थी। 14 मार्च को हम मेरे प्यारे और परम दयाल जी के परमप्रिय शिष्य श्री दुग्गल के घर गये। उनके सुपुत्र तथा उनकी बहू ने हर वर्ष की भाँति हमारा स्वागत किया। इस परिवार का प्रेम अगाध है। मुझे पूरी आशा है कि श्री दुग्गल का परिवार हमेशा सुख, समृद्धि और शान्ति का अनुभव करता रहेगा। 14 मार्च सायंकाल कोई सत्संग का प्रोग्राम नहीं था क्योंकि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था, किन्तु मैं सैकड़ों आये हुए सत्संगियों से बातचीत करने के लिए अपने कमरे से बाहर बैठ गया। थोड़ी ही देर में आगरा स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया का मैनेजर मेरा अति ही प्यारा आध्यात्मिक बेटा राजेश गुप्ता परिवार सहित, वहाँ पहुँच गया। वास्तव में गुप्ता परिवार मुजफ्फर नगर से आगरा जा रहा था। राजेश को पता था कि मैं उस समय अलीगढ़ में रहूँगा, इसलिये उसने अलीगढ़ के रास्ते से ही आगरा जाने का निश्चय कर लिया था। राजेश ने बहुत नम्रता और प्रेम से कहा कि मैं उसे कुछ सत्संग सुनाऊँ। कु० साधना ने शब्द पढ़ा और दो घण्टे तक धाराप्रवाह सत्संग चलता रहा। सभी सत्संगी आनन्दित हुए तथा राजेश गुप्ता और उसका परिवार आशीर्वाद लेकर आगरा के लिए रवाना हो गये। 15 मार्च का सत्संग भी प्रभावशाली रहा। 16 मार्च को हम करीब 10 बजे प्रातः अलीगढ़ से रवाना होकर मध्याह्नान्तर तक करीब 3 बजे खतौली पहुँचे। वहाँ से पता चला कि खतौली में मेरे पत्र के अनुसार 17 मार्च को सत्संग रखा गया है। अतः हम उसी रात को

मुजफ्फर नगर पहुँचे और वहाँ 17 प्रातःकाल सत्संग देने के बाद दुबारा खतौली आ गये। इस प्रकार खतौली वाले सत्संगी प्रसन्न हुए। 18, 19 और 20 को मुजफ्फर नगर में श्री रुपेन्द्र बत्तरा के घर पर सत्संग आयोजित हुए।

इसी दौरान में एक बार मुण्डभर और एक बार चरथावल गाँव में सत्संग के लिए गये। दोनों स्थानों पर प्रेमी और श्रद्धालु सत्संगी बड़े चाव से सत्संग में शामिल हुए। मुण्डभर वालों का आग्रह है कि एक बार मुझे उस गाँव में ही ठहरना चाहिए। चरथावल के प्रेमी सत्संगी श्री राम नारायण त्यागी तथा उनका परिवार भी यही आग्रह करता है। हालाँकि संगत के बढ़ जाने से मेरे लिए यह सम्भव नहीं है कि हरएक गाँव में 24 घण्टे ठहर सकूँ। तथापि मैं प्रयास करूंगा कि गाँव वालों की माँगों को कभी न कभी पूरा करना चाहिए। मैं यह इसलिये कह रहा हूँ कि अब भी शहरों की अपेक्षा छोटे-२ ग्रामों में प्रेम और श्रद्धा अधिक है। मैंने इस बात का अनुभव 1962 के उस चुनाव में किया था, जिसमें मुझे एक गाँव में निर्वाचन अध्यक्ष बनकर राजस्थान धारासभा के चुनाव के लिए जाना पड़ा था। मैंने अपने इस अनुभव का विस्तारपूर्वक वर्णन एक-दो सत्संग में किया है। मासिक सन्देश में भी फिर कभी इस अनुभव का विस्तारपूर्वक वर्णन करूंगा। यहाँ पर मैं संक्षेप में केवल यह बता देना चाहता हूँ कि इस गाँव में कांग्रेस पार्टी तथा जनसंग पार्टी का ज़बरदस्त विरोध था और सम्भव था कि निर्बाचन के समय गोली चल जाये। मैंने इस तनाव को बिना पुलिस की सहायता के समाप्त कर दिया और निर्वाचन बहुत शान्ति पूर्वक हो गया।

इसका कारण यह था कि मैंने गाँव की पंचायत को

बुलवा लिया और उनमें दोनों विरोधी दलों के सदस्यों को कहा, "आप इस गाँव में कब से रह रहे हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया, "श्रीमान् ? जब से यह गाँव बसा, उसी समय से सैकड़ों वर्षों से यहाँ रहते चले आ रहे हैं और हमारा आपस में प्रेम है, रिश्तेदारी है और लेन-देन है। हम हमेशा प्रेम-पूर्वक रहते चले आये हैं। केवल इस निर्वाचन के कारण हमारी दो पार्टियाँ हो गई हैं। एक पार्टी कांग्रेस के उम्मीद-वार मोदी के हक में है और दूसरी पार्टी जनसंघ के उम्मीद-वार गुप्ता के हक में है।" मैंने उनसे कहा, "क्या आपमें से किसीने मोदी को या गुप्ता को इस गाँव में देखा है ?" जब उन्होंने नहीं में उत्तर दिया, तो मैंने बड़े प्रेम से उनसे कहा, "मेरे प्यारे भोले-भाले ग्राम निवासियो ! निर्वाचन के बाद इन दोनों बनियों में से एक बनिया धारासभा का सदस्य बनेगा। जब तुमने इन दोनों में से किसीको देखा ही नहीं, तो तुम आपस के सैकड़ों वर्षों के प्रेम को भुलाकर नफरत के वश में क्यों एक-दूसरे को हानि पहुँचाने पर तुले हुए हो। तुम्हें चाहिए कि बिना किसी हिंसा के कल मतदान देने आओ।"

मेरे इतना कहने पर दोनों पार्टियों ने परस्पर विरोध छोड़ दिया और दूसरे दिन इतनी शान्ति से मतदान हुआ कि उस गाँव के 981 मर्द-औरतों और नौजवानों ने उसमें भाग लिया। बावजूद कलैक्टर के, यह कहने पर कि उस गाँव में सशस्त्र पुलिस का पहरा होना चाहिए, मैंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और सशस्त्र पुलिस को जयपुर वापिस कर दिया। मेरे और उनके प्रेमपूर्वक वार्तालाप का बहुत अच्छा परिणाम निकला। जब हम सायंकाल मतदानों के सन्दूकों को अपनी बस में रखकर जयपुर रवाना होने के लिए तैयार हुए, तो गाँव के सैकड़ों प्रतिष्ठित लोग

विदाई के लिए मौजूद थे। उन्हें ऐसा लग रहा था कि जैसे हम वर्षों से उनके साथ रहे हों। उनमें से कुछ वास्तव में आँसू बहा रहे थे, बहुत से लोग सब्जी, अनाज आदि का उपहार भी लाये। उनके इस प्रेम को देखकर हमारी पार्टी के सभी सदस्य दंग रह गये। जब हम वहाँ से रवाना हुए तो गाँव वालों को एक धक्का सा लगा। इसलिये मैं जानता हूँ कि गाँव के रहने वालों में अब भी सरलता, प्रेम और सहयोग ज्यों का त्यों बना हुआ है।

मैंने इसी अनुभव के आधार पर ही ऊपर कहा है कि मुण्डभर और चरथावल के सत्संगियों के प्रति मेरे मन में आदर है। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि कभी न कभी मेरे सत्संग का दौरा ग्रामों में भी होना चाहिए। किन्तु यह तभी हो सकेगा जब तराना की तरह एक केन्द्र पर अलग-२ ग्रामों के सत्संगी इकट्ठे हो जायें। मध्य प्रदेश की इस प्रथा को हम दूसरे प्रान्तों थे भी लागू कर सकते हैं। मैं समझता हूँ कि मानवता धर्म का प्रचार यदि ग्रामों में किया जायेगा, तो हमारे देश में राजनीति भी शुद्ध हो जायेगी। मैं अपने नगरनिवासी सत्संगियों से अनुरोध करता हूँ कि वह ग्रामीण सत्संगियों से सम्पर्क बनायें और उन्हें मानवता धर्म पर चलने की प्रेरणा देते रहें। इस प्रकार हम मुज़फ्फर नगर में 20 मार्च तक सत्संगों का सिलसिला समाप्त करके 21 मार्च को रवाना होकर सरसोंहेरी और यमुनानगर होते हुए 22 मार्च को होशियारपुर पहुँच गये। 22 मार्च से वैसाखी के पर्व की तैयारी के लिए मैं लगातार होशियारपुर में रहा। यहाँ पर दैनिक और साप्ताहिक सत्संगों के अलावा मुझे पत्र-व्यवहार में और मासिक सत्संग आदि लिखवाने में दिन-रात व्यस्त रहना पड़ा।

हालाँकि इस बार बैसाखी 12 और 13 अप्रैल को

मनाई जानी थी, फिर भी बाहर से आने वाले सत्संगी 4 अप्रैल से मानवता मन्दिर पहुँचना शुरू हो गये। आप सब जानते हैं कि परम दयाल जी महाराज ने 1962 में मानवता मन्दिर में वैसाखी सत्संग का सिलसिला जारी किया था। इन सत्संगों में वह अपने उच्चतम अनुभवों के आधार पर अपनी वाणी द्वारा अमृतधार बहाया करते थे। इसके अलावा वह अन्य धर्मों के आचार्यों तथा अपने द्वारा नियुक्त किये हुए, राधास्वामी मत के आचार्यों को भी सत्संग कराने का मौका दिया करते थे। उन्होंने बार-२ अपने सभी सत्संगों में और खासकर वैसाखी के सत्संगों में अत्यन्त सरल भाषा में गुरु के सच्चे रूप को बयान किया और बताया कि बाहरी सद्गुरु वो ही सच्चा सद्गुरु है, जो अपने अन्दर परमतत्त्व एवं अविनाशी साक्षीभाव का अनुभव करके, वही चेतना सत्संगियों में जगा देता है। न ही केवल इतना, बल्कि सच्चा सद्गुरु वो है जो कण-२ में घट के भीतर और बाहर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और समाधि की अवस्था में अपने निजस्वरूप को उसी प्रकार उपस्थित मानकर, जिस प्रकार कि वह हर व्यक्ति के अन्दर मौजूद है, हर सत्संगी को सद्गुरु मानकर नमस्कार करता है। शायद आप इस ऊँचे अनुभव को पूरी तरह से न समझ सके हों; इसलिये मैं आपको इसकी व्याख्या करके फिर से बताना चाहता हूँ कि राधास्वामी मत के वेदव्यास और परमतत्त्व अवतार, परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज ने कबीर साहिब और स्वामी शिव दयाल जी महाराज के द्वारा परम पुरुष की जो सच्ची व्याख्या की है, उन्होंने उसे अपने-२ ढंग से बयान किया है। मैं भी उसी सत्य को सत्संगों और लेखों में स्पष्ट करने की कोशिश करता हूँ।

गुरु के तीन पहलू हैं। उसका पहिला रूप यह है कि

वह अपने आप में पूर्ण होने के कारण गुप्त रहता हुआ जगत् से, जगत् की सृष्टि से देवी-देवताओं से, ब्रह्मा, विष्णु, शिव से, और अपनी सत्त, अलख, अगम, अनामी अवस्थाओं से परे एक ज़ाते पाक है। उसके इस रूप को कोई परात्पर ब्रह्म, कोई अकाल पुरुष, कोई ज़ाते मुतलक, कोई अल्लाह, कोई अजायबपुरुष, कोई पूर्ण पुरुष और कोई राधास्वामी दयाल कहता है। सभी जीव इस जगत् में आकर के सुख-दुःख के अनुभवों से त्रस्त होकर उसीकी तलाश में धारा से राधा बनकर उसीमें मिल जाने की प्रबल इच्छा करते हैं।

उस गुरु का दूसरा पहलू यह सारा जगत् है जिसमें उसका अंश झलक रहा है। इस दृष्टि से वह अविनाशी साक्षी अंश हरएक जीव के अन्दर मौजूद है। जीव अबल, निबल और अज्ञानी होने के कारण अपने आप को अपूर्ण समझता है और परमतत्त्व की इस व्यापकता को न जानता हुआ काल और कर्म के चक्र में फँस जाता है। उसके इस अज्ञान को दूर करने के लिए गुरु का पहिला पहलू दयाल पुरुष, राधास्वामी दयाल या पूर्ण पुरुष या ज़ाते मुतलक मनुष्य का चोला धारण करके जीवों को भवसागर से पार ले जाने के लिए अवतरित होता है। यही परमतत्त्व का तीसरा पहलू है, जिसे हमने बाहरी गुरु कहा है। इस बाहरी गुरु का यह फर्ज़ है कि वह जीवों को उनके अन्दर गुप्त एवं छुपे हुए अविनाशी भाव को उभार दे। इसी कर्त्तव्यपालन के लिए परमतत्त्वाधार विश्वातीत राधास्वामी दयाल ने आदिकाल से ऋषियों, सन्तों और गुरुओं की परम्परा चला रखी है। जब कोई सतगुरु इस जगत् में जन्म लेता है, वह अपने समय के सद्गुरु वक्त से अभयदान प्राप्त करके अपने अन्दर अविनाशी तत्त्व का अनुभव करके उसीको दूसरों के अन्दर भी देखता है और अपना अनुभव बाँट कर सभी

को अपना जैसी बना लेता है।

इसी परम्परा में मानवता धर्म कबीर साहिब से चल-कर स्वामी जी महाराज द्वारा 19वीं शताब्दी में फिर से नये ढंग से चलाया गया। परम दयाल जी महाराज के द्वारा दी गई आज्ञा के अनुसार मैं आपको सद्भावना से और सच्चाई से अपना अनुभव बाँट कर आपकी सेवा कर रहा हूँ। जैसा कि मैंने आपको पहिले बताया है, मैं यह कर्त्तव्य निभाते हुए आप पर एहसान नहीं कर रहा, बल्कि अपने अनुभव को अन्तर में विकसित करता हुआ अगम शब्द की धार में विलीन होता हुआ अधिक से अधिक सहज समाधि के परमानंद का रसास्वादन कर रहा हूँ। मेरे इस अन्दरूनी विकास और पराप्रेम की चरमसीमा के अनुभव का श्रेय मेरी आत्मांश परमप्रिय सत्संगियो! आपको है, आपको है, आपको है। इसलिये मैं आपके अन्दर अपने परमगुरु परमतत्त्वाधार पूर्णधनी परमसन्त फकीर चन्द जी महाराज को मौजूद पाता हूँ। परम दयाल जी कहा करते थे, ऐ सत्संगियो! तुम मेरे सद्गुरु हो। मैं आपसे निवेदन करता हूँ आप मेरे इष्ट हो। इसलिये आपकी प्रेम और श्रद्धा मेरे व्यक्तित्व से टकराकर हज़ारों गुणा अधिक मात्रा में, मेरे इस सन्देश द्वारा आप तक लगातार पहुँच रही है। यही कारण है कि आप मासिक सन्देश पढ़ते ही आनन्दित हो जाते हैं। यह आनन्द तो उस सुरत की विरासत है, जो आनन्द से परे है, आनन्द को अनुभव करने वाली है, प्रकाश को देखने वाली है और शब्द को सुनने वाली है उसीको ही साक्षी या गवाह कहा जाता है। परम दयाल जी महाराज ने वैसाखी के अवसर पर 1956 से ही सत्संग का सिलसिला जारी किया था। हालाँकि मानवता मन्दिर की स्थापना 1962 में हुई थी। वैसाखी का अर्थ आकाश एवं शब्द का

साक्षी है। वैसाक्षी जिसे वैसाखी कहा जाता है, हमें याद दिलाती है कि वही जगदाधार पूर्ण पुरुष परमतत्त्व दयाल पुरुष, जो सारे जगत् का साक्षी है हमारे अन्दर भी आंशिक रूप से मौजूद है। वैसाखी पर जीव को चिताने के लिए और उसकी पूर्णता को पनपाने के लिए जो सिलसिला परम दयाल जी महाराज ने जारी किया था, इसी को आगे चलाने के लिए मैं हर वैसाखी पर इस पर्व से पहिले ही मानवता मन्दिर में पहुँच जाता हूँ।

जैसा मैंने ऊपर कहा है मार्च के चौथे सप्ताह में यू०पी० के दौरे से वापिस आने के बाद मैं लगातार मानवता मन्दिर में रहा। बाहर से आने वाले लोग अप्रैल के पहिले सप्ताह में ही आना शुरू हो गये। तराना के सेवादार सत्संगी 6 अप्रैल को आ गये थे। इसलिये मुझे 4 अप्रैल से लेकर वैसाखी के उत्सव तक लगातार हर रोज़ प्रातःकाल सत्संग देना पड़ा। मेरा कहने का मतलब यह नहीं है कि मुझ पर सत्संग देने का दबाब पड़ा जब सत्संगी दूर-२ से होशियारपुर आते हैं, तो मेरा यह फर्ज़ हो जाता है कि मैं उनकी सत्संग द्वारा सेवा करूँ और ऐसा करने में मुझे परमानंद का अनुभव होता है। इसलिये मैंने कहा था कि सत्संग देते समय, मैं किसी पर एहसान नहीं कर रहा होता। दो दिन के वैसाखी के सन्त सम्मेलन में, मैंने यही विचार व्यक्त किये जो मैंने इस सन्देश में आपको अभी-२ दिये हैं। 12 अप्रैल को तो बाहर से आने वाले आचार्यों ने मेरे सत्संग के बाद बहुत प्रभावशाली सत्संग दिये। इस बार पंजाब की गम्भीर स्थिति के बावजूद भी वैसाखी के दोनों दिन सत्संगियों की इतनी अधिक भीड़ थी जिसकी मिसाल पिछले 20 वर्षों में नहीं मिलती।

इससे यह ज़ाहिर होता है कि हमारे सत्संगी पूरी तरह

में शरणागत हैं, वह हर परिस्थिति में मानवता मन्दिर के उत्सवों पर भारी संख्या में शामिल होते हैं। वैसाखी के अवसर पर सत्संगी आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बम्बई, उज्जैन, इन्दौर, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश बल्कि विदेशों से भी आकर सम्मिलित हुए। ऐसे अवसरों पर उन सबको रूहानियत की खुराक तो मिलती है, इसके साथ-२ चारों ओर से आये हुए सत्संगियों का आपस में प्रेम बढ़ता है और बावजूद अलग-२ रीति-रिवाजों में पले हुए और अलग-२ प्रकार की वेष-भूषा और आहार का सेवन करते हुए ऐसा महसूस करते हैं कि वे सब एक ही मानव परिवार के सदस्य हैं। वह मानवता के सुनहरी सूत्र में ऐसे गुथे हुए हैं, जैसे माला के मनके एक सूत्र में बुने हुए होते हैं। वास्तव में जगत् की यही स्थिति है। इस अनेकत्व के जगत् में हर वस्तु दूसरी से अलग है। जुड़वें बच्चे भी अलग-२ प्रवृत्ति के होते हैं। लेकिन इस अनेकत्व में परमतत्त्व की धारा समान रूप से बहती हुई एकत्व का अनुभव कराती है। परमतत्त्व आधार, परब्रह्म इस जगत् को स्वयं अलग-२ पहलुओं में प्रकट करता है। हर वस्तु के अन्दर भेदभाव होते हुए भी मालिक की एक ही झलक दिखाई देती है। इसी अनुभव को अनेकत्व में एकत्व का अनुभव, विषमता में समता की दृष्टि कहते हैं। इस दृष्टि के अनुसार माया और ब्रह्म अलग होते हुए भी एक हैं। दाता दयाल जी के शब्दों में :—

माया ब्रह्म का भेद है न्यारा ।
भेद वाद है भरम कथा ॥
जो कोई इसका रूप पहिचाने ।
भेद वाद है धरम कथा ॥

दृष्टि सृष्टि का सकल पसारा ।
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि ॥
भक्ति की दृष्टि जब आई ।
ईश्वर मय हो गई सृष्टि ॥

राधास्वामी मत इसीलिये शिरोमणि है कि वह जगत् को वाचक वेदान्तियों की तरह झूठा या मिथ्या नहीं कहता। जगत् माया है लेकिन वह योगमाया है। वह मालिक की सृजनशक्ति है। इसलिये इस जगत् में रहते हुए माया के रूप को समझकर, उसकी सीमाओं को जानकर उसीके द्वारा मालिक तक पहुँचना चाहिय। मालिक ने यह माया इसलिये प्रकट की, कि जीव जो वास्तव में अविनाशी, अनामी, परमतत्त्व का अंश है, इस माया में प्रवेश करके विरह में आकर सच्ची लगन से अपने सर्वाधार की ओर धारा से राधा बनकर तेज़ी से वापिस लौटें और निजधाम में पहुँच कर ही विश्राम करें। माया उस व्यक्ति के लिए ठगनी है, जो उसके रूप को नहीं पहिचानता। जो व्यक्ति उसकी हैसियत को जानता है और पराप्रेम में ओत-प्रोत होकर अन्दर से परमतत्त्व में मिल जाता है, वह इस माया पर विजय पा लेता है। कबीर साहिब ने इसी सच्चाई को बयान करते हुए कहा है।

माया तू ठगनी भई, ठगत फिरे सब देश।
जो ठग ठगनी को ठगे, ता ठग को आदेश ॥

माया को ठगने का मतलब उसका विरोध करना नहीं है, बल्कि मालिक के सच्चे प्रेम के द्वारा माया को भी उसीका रूप बना देना है। वास्तव में माया या शक्ति अपने आप त पूर्ण नहीं है।

माया हमेशा मायावी की होती है और शक्ति शक्तिमान् की होती है। माया का ब्रह्म के बिना कोई अस्तित्व

नहीं है और ब्रह्म माया के बिना अपने आपको प्रकट नहीं कर सकता। शक्ति शक्तिमान् पर निर्भर है और शक्तिमान् शक्ति के कारण ही शक्तिमान् है। इस भेद को समझने के बाद ही जीव इस जगत् में रहता हुआ संसार के सुखों को भोगता हुआ, परिवार और गृहस्थ में आनन्द लेता हुआ, अपने आपको मालिक से जोड़ सकता है। आत्मा को मालिक से जोड़ना राधा को स्वामी से मिलाने को ही योग कहा जाता है। यही कारण है कि राधास्वामी योग में स्वामी-२ नही जपा जाता बल्कि राधास्वामी जपा जाता है। इस योग को सहज में अपनाने के लिए सुरत-शब्द योग का साधन काम में लाया जाता है। इस विषय को मैंने इस बार वैसाखी के सत्संग में अपने अनुभव के आधार पर स्पष्ट किया। यह व्याख्या देते-२ मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने आप मैं खो गया। यही हालत सत्संगियों की हुई। वह भी सत्संग की धारा में डूब गये, निमग्न हो गये, मस्त हो गये। सत्संग राधास्वामी योग में बदल गया। इस प्रकार वैसाखी का उत्सव व्यावहारिक दृष्टि से भी सफल रहा। इस मासिक सन्देश में यहाँ तक की सूचना काफी है। मैं आप सबको वैसाखी की सद्भावना देता हूँ और चाहता हूँ कि आप शरीर, मन और आत्मा को परस्पर सम्बन्धित करके इस लोक का सुख भोगते हुए परमधाम का अनुभव करें।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

प्रिय सत्संगी भाइयो-बहनो,

राधास्वामी !

आपको यह सुनकर अति प्रसन्नता होगी कि लगभग साल भर की दौड़-धप के बाद, मानवधाम में 15 या 20 प्लाटों की ज़मीन और प्राप्त हो रही है। बहुत से सत्संगियों ने महाराज जी तथा मानव धाम के अधिकारियों से प्लाट लेने के लिए ज़बानी और लिखितरूप में प्रार्थना की थी। आज फिर से सबको बराबर अवसर दिया जा रहा है कि जो भाई-बहन प्लाट लेना चाह रहे हैं वह फ़ौरन यह फार्म 1000 रु० के ड्राफ्ट के साथ निम्नलिखित फार्म भर कर भेज दें :---

फार्म

मैं.....................................सत्संगी मानवता धर्म, मानव धाम में फकीर सत्संग भवन के आस-पास ढ़ाई सौ गज़ का एक प्लाट लेने के लिए एक हज़ार रुपये का ड्राफ्ट सेक्रेटरी, मानव धाम को रजिस्ट्री द्वारा के भेज रहा हूँ। अपना नम्बर आने पर मैं 15 दिन के अन्दर बाकी (47,000/-) का ड्राफ्ट या क्रास चैक मानव धाम के सेक्रेटरी को भेज दूंगा।

आवेदक

हस्ताक्षर.....................

तिथि.........................

पता..........................

प्लाट लेने के इच्छुक भाई-बहिन यह सूचना पढ़ने के साथ ही इस फार्म को रजिस्टर्ड पत्र से फ़ौरन सेक्रेटरी,

International Society of Humanism, Quarter No. 2, Teachers Colony, Modi Nagar (U. P.) के पते पर भेज दें। ज़मीन की रजिस्ट्री होते ही आपको सूचना भेज दी जायेगी और तब दो सप्ताह के अन्दर आपको बाकी सैंतालीस हज़ार का ड्राफ्ट रजिस्ट्री द्वारा भेजना होगा। पर दो बातों का विचार आपको रखना होगा। पहला यह कि प्लाट केवल सत्संगियों को ही दिये जायेंगे, जिसे वे किसी हालत में किसी और को बेच नहीं सकते। यदि वे कभी बेचना ही चाहें तो सोसाइटी को उस समय की कीमत के अनुसार ही बेच सकेंगे। दूसरा, कि प्लाट सीमित होने के कारण जिसका फार्म पहले आयेगा, उसे ही प्लाट दिया जायेगा। बाकियों के एक हज़ार के ड्राफ्ट वापिस कर दिये जायेंगे। आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि International Society of Humanism का Provisional के अस्थायी दफ्तर Teachers Colony, Quarter No. 2 Modi Nagar (U. P.) में टेलीफोन लग गया है। यदि आप सेक्रेटरी साहिब को फोन द्वारा सूचित कर देंगे कि आप फार्म भेज रहे हैं तो आपका नाम उसी तारीख से नोट कर लिया जायेगा। फोन नं० 2003 है।

मानवता का विश्व-केन्द्र
फकीर सत्संग भवन, मानवधाम

फकीर सत्संग भवन के निर्माण में आशातीत धन के व्यय होने के कारण कुछ समय के लिये काम बन्द करना पड़ा था। पैसे की अपील करने के बाद करीब एक लाख रुपया और आया है, परन्तु यह धन राशि अपर्याप्त है। फकीर बाबा का फकीर सत्संग भवन बहुत ही विशाल है जिसके लिए काफी धन की आवश्यकता है। बहुत से सत्संगियों ने पिछले दशहरे में महाराज जी से चुपके से बड़े प्यार से एक सुझाव पेश किया था कि वे दस या बीस रुपये प्रति माह फकीर सत्संग भवन निर्माण के लिए भेज देंगे, बशर्ते कि अधिकारी लोग मज़ाक न उड़ाएँ। मज़ाक क्यों उड़ायेंगे ? आपको शायद यह पता नहीं होगा कि परम दयाल जी महाराज एक रुपये के मनीआर्डर को, जो कि निर्धन तथा पवित्र हृदय वाले सत्संगियों द्वारा भेजा जाता था, माथे से लगाकर अति आनन्दित होते थे। वे अक्सर कहा करते थे, "मैं यह चाहूँगा कि लाख सत्संगी एक-एक रुपया भेजें, न कि एक ही सत्संगी लाख रुपये भेजे।" उनके कहने का अभिप्राय यह था कि एक रुपया भेजने वाले सत्संगी में अहंकार नहीं होगा ; लाख रुपये भेजने वाले में अहंकार होगा। हज़ूर मानव दयाल जी महाराज चाहें तो लाखों रुपये एक दिन में आ सकते हैं। परन्तु उनका तो कहना है कि यह उनके गुरु और मिशन की परम्परा में नहीं है। दान देने वाला तो दिल से देता है, उस पर दबाव

नहीं होना चाहिए।

प्यारे सत्संगियो, दस रुपये महीना निकालना कोई मुश्किल नहीं है। यदि आप चाहते हैं कि फकीर भवन के निर्माण का काम चालू रहे तो आप इस सुझाव को अपनायें और हर महीने दस-बीस रुपये सेक्रेटरी, इण्टरनैशनल सोसाइटी ऑफ ह्यूमैनिज़म (International Society of Humanism) Quarter No. 2, Teachers Colony, Modi Nagar (U. P.) को भेजना शुरू कर दें। आपके फकीर सत्संग भवन में कई हज़ारों व्यक्ति एक साथ बैठकर सत्सग का लाभ उठा सकेंगे और आपके रहने के लिए आरामदायक प्रबन्ध किया जा सकेगा। आपका यह दस रुपया महीना लाखों रुपये के समान सिद्ध होगा। आपका फकीर सत्संग भवन शीघ्र ही विश्व व्यापी मानव धर्म केन्द्र बनकर उभरेगा जिसकी एक-एक ईंट और पत्थर में आपका प्यार भरा होगा।

इस दशहरे के सत्संग के दौरान जब फकीर सत्संग भवन के निर्माण के लिए सत्संगियों के सामने प्रति माह दस रुपये का योगदान देने का सुझाव रखा गया तो सत्संगियों ने इसे बहुत ही पसन्द किया। परन्तु कुछ लोगों ने यह कठिनाई ज़ाहिर की कि हर महीने दस रुपये भेजने की बजाय साल में एक बार 120 रु० भेजने में आसानी रहेगी, सत्संगियों को भी और रसीद काटने वालों के लिए भी। सत्संगियों का यह सुझाव बहुत अच्छा है। कुछ सत्संगियों ने यह भी तय किया कि भले ही अपने पास दस रु० हर महीना जमा करते जायें और साल में एक ही बार भेजें। परम दयाल जी के एक परम श्रद्धालु भक्त ने यह सुझाव दिया कि परमतत्त्व के अवतार परम दयाल जी महाराज के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में नवम्बर 18 को सब सत्संगी 101 रु० सेक्रेटरी, International Society of Humanism,

Teachers Colony, Quarter No. 2, Modi Nagar (U.P.) मोदी नगर (यू० पी०) के पते पर मनीआर्डर, ड्राफ्ट या क्रास चैक द्वारा भेज दिया करें। नवम्बर में परमाधार परमतत्त्व मालिके कुल परम दयाल जी महाराज के जन्म के महीने में जितना पैसा इकट्ठा हो जायेगा, उसकी सूचना आपको मानव मन्दिर द्वारा दे दी जायेगी और सबको रसीदें भेज दी जायेंगी। परम दयाल जी महाराज की यह भविष्य-वाणी कि 'मानवता धर्म फैलेगा! फैलेगा!! फैलेगा!!!' मानव धाम के विश्व केन्द्र द्वारा सफल हो जायेगा।

प्यारे सत्संगियो, यह सुझाव इस साल से ही क्यों न शुरू कर दिया जाये? आप सब पहली नवम्बर से लेकर 30 नवम्बर तक, जो कि परम दयाल जी महाराज का जन्म मास है, अपना-अपना अंश दान भेज दें। कुछ लोगों ने तो इस सुझाव के आते ही अपने पैसे जमा करा दिए हैं। उनको धन्यवाद है। मानव परिवार से पुनः अनुरोध है, क्योकि हम तो केवल अनुरोध ही कर सकते हैं, मांग नहीं। अनुरोध यह है कि इस सुझाव को साकार कीजिए। यदि मानव परिवार का हर सदस्य यह छोटा सा अंशदान वर्ष में एक बार भी देगा, तो हमें लाखों रुपये देने वालों की आवश्यकता ही नहीं होगी। अपना मानव परिवार ही मानव धाम के विश्व केन्द्र को पृथ्वी पर साकार कर देगा। यही उत्तम होगा।

आपका मानवमय सेक्रेटरी

International Society of Humanism

———

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Octt. 10th, 1990

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

LIGHT ON ANAND YOGA

GLIMPSE V

by

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj Varman
M.A.LL.D.

(Further Explanations of the Entities)

In the universal terminology of religions, Positivity, Energy etc. are called Spirit, and the reflexive aspect or reflection of the Spirit is termed as Matter, while the hemispherically formed object is called Mind or Mentality. In Spirit or Matter there is no conception. All conception that is formed, comes into existence or repeats itself in the realm of Mentality only.

If the world exists at all, it is with your Mentality only. Beyond the mentality there is no world in the real sense. The world is only mental. All elements, all ingredients, everything that is or that is not, belongs to the domain of Mentality. And it is Mind only that gives name and form to all, and creats its own mental world for itself. As you think,

so is your sight or spectacle. As you hear, so is your vocal world. All depends on one's own mentality. To a disturbed mind the world is nothing but a pandemonium of disturbances, to a calm and quiet mind, there is calmness and quietness everywhere.

They say that God created the world around. This may be true or untrue according to the conception of the man who utters these words. But the real fact is that every man has created a world of his own around himself. The surroundings are according to his own ideal that pervades his ideas. His wife is what he had had the conception of. His children are what he had bred in his brain. His house is what his mind had designed in the innermost depths of his mentality.

There is the duration of time : past, present and future. And therefore, man is the creator of his own destiny. He believes, that he is the creature of circumstances, whereas in reality, he is the creator of circumstances. For instance, you believe that man is a creature of God. Very good. Does he not create his offspring in his own turn ? So, it follows that the creature is the creater also, and every one's creation comes out of himseif as he wishes it to be. It may take time and it may not ; both the conditions depend upon the will-power and the intensity of his desire.

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

GLIMPSE VI

CONDITIONS OF MENTALITY

When the mind awakens, then comes the condition of wakefulness. When the mind dreams, it creates dreams around itself just like the cocoon or cobweb —envelope of a silkworm. When the mind sleeps, there is the stoppage of everything and its mental world comes to an end abruptly or accidently or incidentally.

When mind creates the condition of wakefulness, it assumes innumerable forms and names. With the awakening of mind one's senses come into play and the mind acts as if it were the chief controller, chief worker and chief agent in and out of all.

Seating itself in the centre of vision, mind sweeps the eyes as the instrument, controls their faculty, and is unknown to them while forsooth it is the chief seer.

Locating itself in the midst of ears, it treats them as its instruments, controls their faculty, and is unknown to them, while it performs itself the function of the hearer.

When it lodges itself on the tongue, it makes the tongue its instrument, controls its faculty, and is unknown to it, itself being the chief talker.

In this way, from the topmost pinnacle of his head to bottommost part of his body, it is immanent,

making one's whole physical system its vehicle, yet remains unknown to it, and acts as the Supreme Actor on the body. It pervades all. It is present in every pore, every joint, every tissue, every nerve and every physical cell, which baffles scruitity, is bereft of its presence. It is all-in-all, of all and within all. And if you call it thousand-bodied or embodied in millions of frames playing its part in all and with all, like a juggler, it will not be an exaggeration.

This mind is to be read, studied and pondered over. One who knows this, knows all. One who does not, does not know anything at all. Try to know thy 'Self'. Thy self is something which is to be revealed and realised within this Mind faculty.

In the realm of Physicality, the Mind principle, though one, is of million forms and names. The limbs, the organs and the particles of the body are living as long as the Mind plays in and out of them ; but as soon as it retires or retreats inside into the cavity of the heart, the scenes are changed altogether. This much for the physical plane or plane of action.

In the Mental plane there are no eyes to see with, no ears to hear with, no nose to smell with, no tongue to talk with etc. They all become lifeless, inert, dull and inactive when the mind has gone to its own centre, the centre of Mentality.

In the gross physical body its powers were limited, for everything in that plane has limitations, while in the mental state, not only its centre or the seat of activity is unlimited, but it becomes itself free from limitations, for it is all in all.

It creates its mental surroundings. It manifests itself in its mental form. Nothing is impossible or impracticable for it. It is the creator in the true sense of the word. It creates parents, relations, friends, gods, goddesses, oceans, deserts, heavens and hells etc. etc.

Of it is said that "it walks without legs, hears without ears, tastes without tongue and acts without hands, and that too, in a number of ways. It has no organs of taste but it relishes all that is relishable and enjoys all that is enjoyable, does nothing, but is a Yogi at the same time." The so many attainments of the Yogis are the results of their mental concentration and nothing else. This much for the mental plane.

The third condition is the state of sleep, or rather sound sleep wherein the mind gets itself absorbed in the fountain of life. It is as if it were its resting place. In this region there is neither

limitation nor unlimitation ; their is neither the conception of one, nor two, nor three. It is what it is. "Indescribable, unimaginable, unfathomable," it has been called by the seers of yore.

Limitation is the characteristic and chief feature of the wakeful condition of the physical universe. Unlimitation is the characteristic and main feature of the mental universe. The spiritual universe, which borders on the dreamless region, is beyond limitation and unlimitation.

FORMLESS GOD

by

Param Sant Param Dayal Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Oh my dear followers of religions and denominations ! I was born in a respected Brahmin family. I had the longing to see the Supreme God face to face. I was keen to know that Master, who is the Ground of everything. Having been born in a Hindu family, I was given impression from the very childhood that the Supreme God incarnates Himself time and again. So I wanted to see that Divine Incarnation with my own eyes.

One day I cried and wept continuously for twenty-four hours, because I wanted to see the Supreme Master in human form to love and serve Him. I had a vision in that state of despondency in 1905. This vision made me believe that my Supreme God had already incarnated Himself in the form of Data Dayal Maharshi Shiv Brat Lal Ji Maharaj. I went to the refuse of his holy feet, loved him from the core of my heart, served him and experienced

bliss. He ordered me to follow the path of religion of saints and understand the nature of the Supreme Master as depicted in the following verse of Saint Kabir :—

Oh you the formless Supreme Being !
Who can serve you without seeing ?
Everyone serves carved God who is in sight ;
And worships in rituals day and night.
The nature of the Perfect Supreme Master ;
Is not known to anyone in the alter.
The ten Incarnations of God are well-known ;
But them no one should really own.
Such God only reaps the fruit of action
But the real doer is beyond conception.
The Creator, Sustainer and Destroyer do exist ;
But their real nature is covered by mist.
Do not depend on them for self-realization ;
None of them has ever attained salvation.
The meditator, the celibate the ascentic and renunciate
Do with their psychic powers conflicts create.
Kabir says oh, you seekers ! do listen to me,
Only the meditator of Supreme Sound is free.

Why has the Master been designated as uncarved or formless God ? It is so because nobody has created or carved Him. Swami Ji says :

I discovered Strange Self Supreme ;
Whose secret no one can ever deem.
Sages ascetics have been all deceived ;
None has ever the Truth conceived.
This idea agrees with Kabir statement ;

Everyone serves carved God, who is in sight ;
And worship with rituals day and night.
The nature of the Perfect Supreme Master ;
Is not known to anyone in the alter.
The ten incarnations of God are well known ;
But them no one should really own.
Because they reap only the fruit of their action.

People worship the images or the forms of carved Gods, but they do not understand the secret of real Supreme Self who is Perfect. People are really absolutely ignorant of the nature of the Ultimate Reality. The images in the temple are those of carved God. Rama had physical body, Lord Krishna was embodied. They had all been carved. Their images were cut and sculptured. The external Guru has also the physical carved body. This applies to all the masters and guides, whether he be Kabir, Radhaswami Dayal or Guru Nanak. Just one idea led me to search for uncarved God.

All the forms, colours, ideas manifested in my Yoga, meditation and waking life turned out to be carved forms of God. Whatever form appears within me is nothing but the creation or the created form of my own mind, whether it be of Data or of Rama or of Krishna or anyone else. They are all sculptured and created by my mind and hence are the off springs of my conceptualization. They are the children of my desire—the figment of imagination. All my expectations, my longings which crop up in my waking

consciousness are my own creation, which are called by me alone. Then where does the Supreme Master dwell ? He exists at that level where there is nobody, because body is carved. He is not mind, because all the tendencies of mind, desires and longings, percepts and concepts are carved and created. He is not even the cosmos (Brahmand) because the sun, the moon, the stars and the regions or Lokas of Shiva and Vishnu are all carved and created. Then what exists beyond them ? Transcending them all is one unique Element, the Supreme Reality. No one has the capability to understand what it is and what it is not. It is neither within the range of intelligence, nor in that of mind. It can neither be conceived nor found in ego. If anyone can experience that Supreme Reality, he can only do so by transcending body, world and cosmos. The following verse expresses the same idea :—

Our bridegroom is that Supreme Person ;
Who is beyond physical, mental, spiritual creation.

As long as a person has not gone beyond the consciousness of body, mind and soul, microcosm, macrocosm and cosmic Person (Pind, Brahmand and Para Brahmand), he cannot experience the transcendental region of no diamentions of wholly other Supreme Person (Ajayab Purush). I did have this experience and assert that the Supreme Master, who was the object of my search, is that very unique

Supreme Self, who has been designated as Ajayab Purush. I am in full agreement with the great sage Kabir, Swami Ji Maharaj and others, who expressed this truth realistically, but I disagree with those saints who declared to the common man that their external physical Guru will take them to the Supreme Abode at the time of their death. Such Gurus are not saints. They may be called great souls. It is so because the propounders and the spiritual guides of all religions give a kind of satisfaction to the physically weak, mentally disturbed and spiritually ignorant souls, by giving them hope. Such great souls deserve to be called merciful ; but they are not saints. But this kind of hope or support has led to the division of mankind into watertight comportments of religion, sects and denominations, because of the ignorance of Real Truth. Some became Hindus, others Muslims, Christians, Jainas, Buddhists, Sikhs, Kabirists and the adeherents of Radhaswami faith. Where did it lead to ? To Conflicts, wars and bloodshed. The practitioners of Yoga, ascetics and renunciates continue to quarrel with one another, because they are selfish and distinguish between religion and religion. The great saint Kabir has said :—

The meditator, the celibate, ascetic and renunciate ;
Do with their psychic powers conflict create.
Kabir says Oh, you seekers ! do listen to me ;
Only the meditator of Supreme Sound is free.

The saints have manifested themselves as the Incarnation of God in this Iron Age only to reveal and explain the Truth and to wipe out the religious wranglings, prejudices and begottism. Swami Ji has rightly stated :—

The golden, the silver and copper ages have gone round
No one knew the unity through the Yoga of Sound.
In the iron age the Lord became compassionate ;
And did the Yoga of Sound clearly state.

Swami Ji Maharaj did experience the formless God and openly declared "if one wants to seek one's Original Home, then one must consider all those thoughts, forms and colours, which arise in your mind to be illusory and temporary, generated from the illusion producing Maya in the changing time. Your real Home is beyond all these categories. If you want to go to the nameless Supreme Abode, or timeless state, you should catch hold of the Sound (Shabda) or Nam (Name) of the Nameless." This is the meaning of the statement that the Supreme Master, inspired by the compassion, revealed the truth of Yoga of Sound in the iron age. My Supreme Master Data had given me the task of helping the physically weak, mentally disturbed and spiritually ignorant individuals. I spent my whole life in helping the suffering souls to fulfil that task.

If you serve someone selflessly, give food to the hungry, water to the thirsty, medicine to the

sick and knowledge to the ignorant that charity or gift will be supremely beneficial to you. But if you donate money to me or offer gifts, with the idea that Baba Faqir will appear and help you in the time of your suffering, or solve your problems, then this charity is not a charity in the real sense. This is your selfishness, your ignorance. Those Mahatmas (great men) who accept the charity of such selfish persons, are themselves drowned in ignorance. Those guides and Mahatmas are mean and cheats, who tell their disciples in secret that they will take the disciples in heaven at the time of their death. I have come in the form of Faqir (Supreme Saint) from the Nameless Abode to reveal the Truth. When His Holiness Sawan Singh Ji Maharaj told me that I should reveal this Truth fearlessly, I took up this responsibility, even though it is an arduous task. People oppose me at every step. He said to me, "Faqir, I could not express the Truth because of my establishment (Dera). Moreover, I think that everyone is not worthy of knowing the final Truth. You are a true Faqir (Saint). You should undertake this task fearlessly. Do not worry. I will be at your back.." I have fulfilled my duty. My booklet Ajayab Purush has been published. You should read it and benefit from it after a good deal of reflection. One should not get the impression that I am againt charity. I am of the opinion that if a person does

not give anything in charity, he gets nothing in return. Those great persons, who have established centres like Vyas, Agra, Nirankari Ashram and Swarg Ashram etc ; are blessed. I do not deride charity. I have myself established Manavata Mandir, but if a person is under the impression that if anybody builds a few rooms in the Manavata Mandir, then Faqir Baba being pleased with this action, will take him directly to heaven, it would be absolutely false self-deception. You can go to the Supreme Abode by hearing, understanding and applying the statement of a true saint in your practical life and go beyond consciousness, mind, intelligence of ego to the tenth level, but not because Baba Faqir or someone else will take you there. The Supreme Saint would reveal the Reality to you. You will be benefitted only when you grasp that secret and arrive at that Nam (Name) or state, which is beyond all manifestations of mind. Then alone you will realize the truth of the following statement :—

At the fourth level exists the Reality ;
The ignorant seeks it in time, space and causality.

As long as you do not catch the Name or Sound, you cannot go beyond the ocean of spatio-temporal world. You may get a better reincarnation, if the form, of Guru appears to you in your vision. In the next birth you will meet some the Perfect

Master, who will awaken you.

Being an honest person, I wish from the core of my heart that the members of the Manavata Mandir Trust, the office bearers, secretary and president etc., may make their life successful and attain the Final Goal, because they have obliged me in helping to fulfil my mission. I bless them and send them my good wishes and share with them the knowledge, which I have attained.

THE MEANING OF NON-VIOLENCE ACCORDING TO GANDHI

by

H. H. Manav Dayal

Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

If the philosophy of Mahatma Gandhi were to be summed up in one word, that word would be 'non-violence'. But this word 'non-violence', as used by Gandhi, has a very wide connotation, which stands for the love born of the universal element of Spirit in man.

The concept of non-violence (Ahimsa) is very old. It is at least as old as the Vedas, because the command of the Vedas 'Ma Himsyat Sarva Bhutani' means 'Do not kill any living being'. The Jaina Tirthankara Mahavira and the Buddha both advocate Ahimsa, as the highest virtue. Jainism placed non-violence higher even than Truth and regarded adherence to truth as the necessary corollary of non-violence with universal compassion. But both these great teachers advocated the practice of Ahimsa in the religious sphere with the sole purpose of leading

suffering individuals towards the painless state of Moksha. They were undoubtedly religious teachers, and as such, they did not apply this virtue as a secular value.

Mahatma Gandhi on the other hand, was the man of masses, interested in the social, economic, political and mundane well-being of the people. His sole purpose was to bring down heaven on earth, by spiritualizing secular life. He was the first to apply the concept of Ahimsa to practical life and to give it the widest possible connotation by identifying it with truth, or God. He was led to this conclusion not merely by deliberation, but by following the path of Ahimsa, and thus by gradually realizing its true significance through experience. Non-violence is a way of life, which is the means as well as the end of the spiritual realization. It is the means because it brings about universal love, compassion and fellow-feeling and a sense of justice. It is the end because absolute non-violence is the highest ideal, the attainment of which would convert a man to God. Though the word non-violence seems to be negative, yet it has a positive import. In the words of Mahatma Gandhi, "Ahimsa means love in the Pouline sense, and yet something more than love, defined by St. Paul, although I know St, Paul's beautiful definition is good enough for all practical purposes.

Love in the English language has other

connotations too. Gandhi advocated the cultivation of truthfulness, humility, tolerance and loving kindness as the necessary prerequisites for the votary of non-violence. Non-violence, as such is the soul force, which is the potential law of human nature and which can be made manifest through the virtues of truth, tolerance, humility and love. Gandhi says "non-violence is the law of our species, as violenae is the law of the brute. The spirit lies dormant in the hrute and he does not know any law. The dignity of man requires obedience to a higher law." It is therefore evident that for Gandhi non-violence is neither a negative attitude of non-agression towards the aggressor, nor does it merely mean avoiding injury to tiny living things, but it is an active force of the highest order. It is soul-force within us.

Metaphysical Basis of Non-Violence :

Usually the metaphysical aspect of non-violence is last sight of and people are misled to believe that Gandhi preached pacifistic philosophy of meakness and non-resistance. "If somebody slaps you on the left cheek, turn your right cheek also towards him." There is no doubt that Gandhi was influenced by Christian ethics, but he was more a mystic in the practical sense and had realized that non-violent behaviour, when inspired from the innermost recess of the human personality, is mightier than the mighties

weapons on the face of the earth. Instead of entering into intellectual discussions of metaphysics and ethics, Gandhi has applied ethics to concrete life. He identified non-violence with truth and the truth with all pervasing God If God, as truth is the basis and background of the universe and man, the only way to Godliness is the life of non-violence and love. So God, Life, Truth and Love are identical, and all are again the ultimate Good. This conviction of God was the greatest strength in the personality of Mahatma Gandhi, which grew in him gradually through inner experience. Gandhi did try to give expression to his belief in the existence of God and said, "There is an indefinable mysterious Power, which pervades everything. I feel it, though I do not see it. It is the unseen power, which makes itself felt and yet defies all proofs because it is so unlike all that I perceives through my senses. It transcends senses. There is an orderliness in the Universe, there is an unalterable law, governing everything and every being that exists or lives. Is it a blind law ? It is not a blind law for no blind law can govern the conduct of human beings......... That law then which governs all life is God........ I do dimly perceive that whilst everything around me is ever changing, ever dying, ther is underlying all that changes a living Power that is changeless, that holds all together that creates, dissolves and recreates. That informing

Power or Spirit is God......... In the midst of death life persists, in the midst of untruth truth persists, in the midst of darkness light persists. Hence, I gather that God is Life, Truth and Love. He is Love. He is the Supreme God. He believed that even the meanest person was capable of being reformed because 'man is the image of God.'

Armed with this conviction in Truth, Gandhi was able to follow the path of non-violence courageously and fearlessly. It is true that without strong conviction in the eternality of the Soul and the omnipresence of the Truth, non-violence, as a mode of life, turns out to be a fiction.

Gandhi, true to his convictions, was replete with deep love for all human beings, because he actually lived up to his ideals which identified love with Truth and Truth with God. The application of non-violence to the individual, according to Gandhi, was God-realization, or getting nearer the Truth or God, who is the source of human spirit. The aim of life is religion, but this religion is the religion of humanity, of love, of dedication, of social service and self-devotion. Gandhi wrote, "I am being led to my religion through Truth and non-violence........ I often describe my religion as Religion of Truth. Of late, instead of saying God is Truth, I have being saying, Truth is God. In order to define my religion more, at one time I used to know by heart a thousand

names of God........ But now a days nothing so completely describes my God as Truth. Denial of God, we have known, but the denial of Truth, we have not known. The most ignorant among mankind has some truth in him. We are all sparks of Truth, the sum total of these sparks is Indestructible, as yet unknown Truth, which is God. I being daily led nearer to It by constant prayer."

Gandhi embodies the spiritual culture and practical ethics. He has pointed out that evil must be hated. But at the same time we should never hate the evildoer. Not only this, but we should neither hear anybody's evil, nor see, nor speak it. We ought to love all human beings, good or bad, kind of cruel, broadminded or selfish, because the Spirit, central in them, is the Unitive Force.

According to Gandhi, the aim of the path of non-violence is the merger of the individual self into the universal Self or God. Gandhi's notion about death can be known from a note of consolation, which he wrote to a friend. He wrote :—

"I am sorry for your loss, which is really no loss. Death is but a sleep and a forgetting. This is such a sweet sleep that the body has not to wake again and the dead load of memory is thrown overbroad...... When the isolated drops melt, they share the majesty of the Ocean, to which they belong. In isolation they die but to merge in the Ocean again."

Gandhi didn't explain his notion of liberation or Moksha, because his aim like, that of the Buddha, was not metaphysical exposition, but the practical eradication of suffering and the well being of whole humanity. Gandhi was pragmatic. His aim of non-violence was self-purification. He says :

(a) Non-violence implies self-purification.

(b) Man for man, the strength of non-violence is in exact proportion to the ability, not the will, of the non-violent to inflict violence.

(c) Non-violence without expectation is superior to violence.

(d) There is no such thing as defeat in non-violence, but the end of violence is surest defeat.

(e) The ultimate end of non-violence is surest victory.

Gandhi asserted that adherence to non-violence was not restricted only to the personal sphere of an individual. The goal of non-violent conduct is self-purification on the one hand, and social well-being on the other. Gandhi's religion is the religion of Humanity, based on the conviction that every man has the spark of Truth, non-violence or Love in him. So the best way to overcome evil is not to kill the evil-doer, but to change his heart, by refusing to retaliate. It is evident that Gandh's religion has a

social bearing. In his words : "For me there is no escape from social service. There is no happiness on earth beyond or apart from it...... Self-realization always implies self-sacrifice. Individuals or nations, who would prectice non-violence, must be prepared to sacrifice all except honour. The technique of non-violence lies in suffering-suffering with a view to purify one's ownself on the one hand, and to change the heart of the aggressor on the other."

He says, "If recognized leaders of mankind, who have control over destruction, were to renounce their use of destructive elements, permanent peace can be obtained"

Commenting upon the Gandhian notion of Truth and non-violence Louis Fischer writes, "Truth is identification with God and humanity. From Truth non-violence is born......" "There is nothing wrong in everyman following Truth according to his lights" says Gandhi from Yervada Mandir. Each person must be true to his own truth. But if the seeker begins to destroy those who see truth in other ways, he would recede from Truth. How can one realize God by killing or hurting ?"

An organized non-violence, which would bring a reign of love and peace, appears to be the only remedy against organized violence, which has given unlicensed freedom to hatred, disorder and destruction.

Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My dearest Ownselves Satsangis,

Blessings of the Supreme Compassionate Lord.

I was telling you about the satsang tour. We stayed at Hoshiarpur from February 25 to March 11. As usual the gathering of satsangees, attending the monthly satsang in the Manavata Mandir, was very large.

Next day, on March 12, we started from Hoshiarpur and reached Meerut the same night. We stayed at the residence of Shri Brahma Singh in Defence Colony. Next day a satsang had been organized by Mr. Brahma Siugh. The satsangees of Meerut, Banwaripur, Khatauli and surrounding areas came to attend the satsang enthusiastically.

I have already told you that Brahma Singh, his wife and children are very dedicated people. They have full faith in the religion of humanity (Manavata Dharma). Whenever we visit Meerut, we stay at the residence of Mr. Brahma Singh. Not only his

immediate family, but all his relations serve us with love and devotion. After the satsang, all the satsangees took meals which was prepared by the family members of Sri Brahma Singh. After the meals, we went to Banwaripur at the residence of Mr. Jai Chand and his brother Mahesh Tyagi. I inaugurated the shop of Mahesh Tyagi and blessed him.

One of the relatives of Mr. Brahma Singh and her daughter accompanied us to Hapur. The noble lady had told me several times that she wanted to donate some land for the Manavata Mandir. So we went to see her land. We rested at her residence.

We started for Bulandshahar and arrived at the residence of a very dedicated satsangee Mrs. Kaushal and stayed there at night. I inaugurated her new house. After satsang all the satsangees had a great feast which was arranged by Mrs. Kaushal. Satsangees like Mrs. Kaushal are very rare. They not only gain spiritually themselves, but are also a great source of inspiration to other satsangees.

My dear ones, I tell you again and again in my satsangs and monthly messages that the Religion of Humanity or Sant Mat is not different from Sanatana Dharma (The Eternal Cosmic Religion). It is the sublimation of Sanatana Dharma. The followers of the Religion of Humanity never talk against any religion, nor they quarrel with people belonging to other sects or denominations, because they are fully

aware that all the forms of god, goddesses and Gurus are the manifestation of The One Supreme Being who Himself has no form or colour. The animal world the plants, trees and worldly objects have all come from Him. His light illuminates them all. His Word (Shabda) is immanent. So, knowing that everything living or inanimate, is a part of the Supreme Being we should not have hatred for any creature of God. Data Dayal Ji Maharaj has beautifully stated :-

Wherever I see, I see your vision ;
Somewhere you are light and somewhere oblivion.
You are lotus, and have assumed lotus form ;
You became the bee, to enjoy fragrant charm.
Wherever I see, I see your stature ;
In my view You are Brahman and You the nature.
The compassion of Radhaswami has been showered on me ;
As the Incarnation of Supreme Saint uncovered the Reality.

I am happy to obsereve that my dearest satsangees are comprehending and adopting this universal love in their lives. I wish that my dear ownselves should follow the path of this universal love which will prepare them for the return journey to their Eternal Abode.

Param Sant, the Incarnation of the Supreme Lord, is the Perfect Master of his time, who shares his experiences with his own dear selves and makes them aware of the Truth. I try my best to share my

experiences with you through my discourses, monthly messages and personal talks.

I was telling you that we started from Bulandshahr on March 13 and arrived at Aligarh at the residence of Major Som Dutta in the evening. We had our dinner after meeting tue satsangees who had gathered at Major Som Dutta's residence and took rest at night.

Three discourses had been organized on March 14 and 15. The number of satsangees from Agra and surronnding areas was larger than previous years. The arrangement of Major Som Dutta was superb.

On March 14, we went to the residence of my dearest devotee, since the time of Param Dayal Ji Maharaj, Mr. Duggal and his dedicated son and the whole family received and served us with great love and respect, as usual. I wish and bless the whole family with health, wealth and peace.

On the evening of the 14th March no satsang had been organized, because I was not feeling well. But people did come to meet in hundreds and met me one by one. Mr. Rajesh Gupta, my spiritual son, who is the manager of the State Bank at Agra, came to see me with his noble wife and lovely children. He requested me to give a short discourse.

Although I had declared that there would be no satsang on that day, yet I could not refuse and

disappoint my dear Rajesh. I did give a satsang and the satsangees were overwhelmed. Satsangs were delivered on March 15 and 16 also. We started from Aligarh on March 16 at 10 a.m. and reached Khatauli in the afternoon. On reaching there we came to know that a satsang has already been announced in Muzaffar Nagar on March 17 early morning. So we had to rush to Muzaffar Nagar after having our lunch and rest for a few hours. We reached Muzaffar Nagar late in the evening, took rest at night and returned to Khatauli after delivering thə satsang. The satsangees of Khatauli were overjoyed.

The satsangs were arranged by Mr. Rupendra Batra, as usual, in Muzaffar Nagar. Once, during our stay at Muzaffar Nagar, we went to the village of Mundhvar and once to the village of Chakwal on the repeated requests of the satsangees of these villages. All the satsangees of these villages and, especially Mr. Ram Narayan Tyagi and his devoted family requested me that I should visit these villages at least oncc every year. I love the villages and the villagers very much. I still feel that the villagers are pure hearted and dedicated. Their love is selfless. I had experienced this fact in 1962, when I was appointed as the presiding officer in the general elections of the Assemblies and the Parliament of India in a remote village in Rajasthan. Perhaps I have

already mentioned about my experience of this election in some of my satsangs also. Here I am mentioning it again to show that my experiences about the villages and villagers have been wonderful. I will try to explain my experience in short. In that village two parties, the Congress and the Jansangh, were contesting the elections. They were so opposed to each other that there was a danger of violence during the polling. I wanted to solve that problem peacefully and without the help of the police.

I called the heads of both the parties where I was staying. There were other villagers also present. I asked them : "I want to know for how long have you been living in this village ?"

They answered : "We have been living in this village for hundreds of years. Our ancestors lived here. We do our business here and live peacefully. We had no problem till the two political parties made us divided. One candidate is from the Congress party ; his name is Mr. Modi, and the other candidate Mr. Gupta belongs to the Jansangh party. I asked them, "Have you met or seen Mr. Modi or Mr. Gupta personally ? Did any of them ever visit the village before the election ?"

They said, "No, we have not seen or met them personally, because they have never visited our village."

I said, "My dear innocent people, you say that

you do not know Mr. Modi or Mr. Gupta personally. Both these business men are fighting for their selfish ends and one of them will win. I am astonished that you have forgotten the love of neighbour. But how can you forsake the love you had for each other for centuries simply to please a candidate you have never seen ? You haven't seen them before nor will you see them ever after the polling is over. They will fish your votes and one of them will be elected. Do you think that either of the two will help you in the time of your need ? They are selfish demagogues having no love for you. Why, then, are you quarrelling with one another, ready to shed blood for these selfish demagogues ? You should not quarrel with one another. Cast your votes peacefully."

The innocent villagers were impressed and they acted on my advice. The polling was held peacefully and the authorities were simply surprised. But the collector was worried, apprehending that there would be violence. So he had insisted that I should deploy armed police near the election centre. But I refused to do so and sent back armed guard. I refused to take any help of the police.

My talk with both the parties was so effective that the election was held most peacefully. The young and the old men and women voted peacefully.

After the election, we had to leave for Jaipur. When we got ready to start, all the villagers gathered

round our bus to give us a wonderful farewell. They brought some small gifts and meals for us. I could see the selfless love from their innocent faces. Everybody felt that we had some common bond of love between us as if we knew one another for years. You see my dear ones ! how love can conquer everyone.

On the basis of this wonderful experience during the election, I have told you that I have a special love for the villagers. I really did enjoy visiting these two villages and was overwhelmed. I do feel and sincerely wish that I should visit the small villages very often. But it is not possible. Yes, it can be possible when people of the villages get together at one point and organize satsang at that place.

I think that if Manavata Dharma, Santmat or Sanatan Dharma is taught in the villages with sincere efforts, politics can be purified and the country can be saved from violence.

After completing the tour of Muzaffar Nagar we started for Sarsonheri on March 20. We had a good gathering in Sarsonheri as usual. After Sarsonheri we went to Yamuna Nagar and from there we started for Hoshiarpur and reached Manavata Mandir on March 22. I had to watch elaborate arrangements for Vaisakhi. So I stayed in Hoshiarpur till Vaisakhi continuously. I was left behind in correspondence. So I completed it and also wrote the

monthly message during this period.

Although the function of Vaisakhi was to be celebrated on April 12 and 13, yet people started coming to Manavata Mandir from April 4, like every year. I appreciate the enthusiasm of such people who devote their precious time and money to be at Hoshiarpur on the festival of Vaisakhi.

Param Sant Param Dayal Ji Maharaj had started the celebration of Vaisakhi Festival in 1962 in Manavata Mandir. On this occasion he used to give most spiritual and inspiring discourses on the basis of his own experiences. He used to invite the heads of their religions and also the Acharyas, whom he had appointed. Everybody was given the opportunity to express his or her thoughts on the stage. Param Dayal Ji Maharaj said repeatedly that the outer Guru awakens your inner Guru. Not only this, but a true Perfect Master is one, who realizes the presence of his own pure self everywhere, inside and outside and awakens the consciousness of that Indestructible Witness in the disciple, on the basis of his own experience. A Perfect True Master, realizing the presence of his own pure Self in the microcosm and macrocosm, as well as in every other individual, bows down to the disciple with this attitude of oneness of the Self with the cosmos. Perhaps you are not grasping this sublime truth presently ; therefore I want to remind you that Data Dayal Ji Maharaj, who

was designated as the Vedavyas of Sant Mat and Param Dayal Ji Maharaj accepted the views of Kabir and Swami Ji Maharaj. Both these Masters have stated the nature of the Supreme Being in their own style. I am also trying to expose that Truth through my writings and discourses.

There are three facets of Guru. Firstly, Guru stands for that Perfect Self who, being unmanifested, is beyond the creation, preservation and reabsorption of the cosmos, beyond Brahma the creator, Vishnu the sustainer and Shiva the destroyer and as such, is the Pure Being beyond even Infinite Existence, and Infinite bliss. As such, He is nameless (Anami) state. This aspect of the Supreme Being is designated as beyond beyond Brahman by some and as Timeless Person by others. Still others call Him Pure Being, Allah, Wonderous Self (Ajayab Purush), Perfect Person, Radhaswami Dayal etc. etc. All the souls who descend in the cosmos, do get fed up with the experiences of pleasure and pain and engage themselves in search of the Source from which they come and turn back.

The second form of the Guru is that cosmos, in which He is partially reflected. This is the Immanent Supreme Being who is present in all individuals. But due to ignorance man is not aware of that divinity in him. The first aspect of the Guru, that is the Pure Being, descends in human form as the Perfect

Master to guide the ignorant souls to the Supreme Abode. This is the third form of the Guru, whom we call the external Guru.

It is the duty of the external Guru that he should actualize and make manifest the potential and unmanifest indestructible nature of the disciple. It is for the fulfilment of this Mission that the Supreme Lord transcendental Radhaswami Dayal has continued the tradition of descending on earth in the form of sages, Saints and Supreme Master. When a Supreme Master takes human birth, he experiences the indestructible Element in himself by inheriting the State of Fearlessness from his living Master and after experiencing the Supreme State in himself, he shares this experience with others.

As I have already told you that, after my long tour of U.P. and Haryana I came back to Hoshiarpur on March 22 and remained in Manavata Mandir till Vaisakhi continuously. I have already mentioned that my dearest satsangees had started coming to Hoshiarpur from April 4. By April 6 hundreds of people reached Hoshiarpur. I gave morning and evening satsangs from April 6, every day for those enthusiastic satsangees. I cannot say that I was burdened by delivering satsangs day and night. My dear ones! I enjoy talking to you. I never feel tired while giving discourses. I really appreciate the courage of those satsangees, who come from very

long distances, inspite of the disturbing conditions in Punjab. It is my duty to bless those satsangees and awaken them with my discourses. I am so overwhelmed that inspite of the disturbances in Puujab the number of satsangees, coming from different parts of India, is increasing every year. You are really great Oh, my dear ones ! I bless you from the core of my heart.

Besides myself, our Acharyas Mr. K. P. Verma, Acharya Capt. Lal Chand, Acharya Shabdanand and others gave inspiring satsangs. The satsangees, who had come from Andhra Pradesh, Maharashtra, Gujrat, Himachal, Bombay, Ujjaiu, Indore, Allahabad Benaras, Delhi, Haryana etc. and some from abroad, really enjoyed their stay at Hoshiarpur and were overwhelmed having had the opportunity of tasting spiritual food. You know when people come from different parts of India with different backgrounds, they are pleased to meet one another. They hegin to love one another so much that they forget their different backgrounds and feel that they have been related to one another for so may lives. They feel a unity iu diversity.

The Radhaswami faith is superior because it does not reject this world as unreal, as the armchair Vedantees believe. The world is Maya (illusion)—that which can be measured. But this Maya or appearance Yog Maya, the creative energy of the Supreme

Being. So we should approach the Supreme Being through Maya, by understanding its nature and by recognizing its limits in our practical life. The Supreme Lord manifested this Maya so that the soul which in reality is the real part of the Indestructible Nameless Being, should experience the pangs of separation by entering into it and should turn back to its Ultimate Ground with great force by changing its outward flow into inward current or Radha so as to reach its original Abode and attain perfect Peace. Maya deceives only that person who is ignorant of its true nature. A person, who understands its limitations and who unites himself with the Supreme Being within ownself by being imbued with Supreme Love, conquers this Maya.

Conquering Maya doesn't mean opposing or contradicting it, but it consists in seeing God in Maya through love. In fact; energy or Maya always belongs to the Energizer or the Master of Maya. Maya has no existence without Brahman and Brahman cannot be manifested without Maya. Energy depends upon the energizer and the energizer is such because he possesses the energy. After understanding this secret alone, the aspirant can unite himself with the Supreme Being inspite of living in the family, as a householder and experiencing bliss, by rising above pleasure and pain, Yoga consists in uniting the Pure Self with the Supreme God or merging Radha into

Swami. That is why Radhaswami Yoga does not advocate recounting "Swami Swami", but mentally repeating "Radhaswami".

This Yoga is Spontaneous Yoga and is also known as the technique of Surat Shabda Yoga. I explained this Truth in my Satsang of Vaisakhi this year very clearly, on the basis of my own inner experience. While doing so, I felt that I had myself merged into the Supreme, during the discourse. The Satsangees also experienced the state of trance being drowned in the current of the satsang. They lost their empirical consciousness. The satsang was changed into Radhaswami Yoga. Thus the Vaisakhi celebration was effective this time. This much of information seems to be sufficient for this monthly message, My dearest ones ! I convey to all of you my compliments of Vaisakhi and wish that you may experience the state of Supreme Abode after integrating body, mind and soul and after rising above these three levels. Blessings of the Supreme Being to all of you.

Yours in Faqir
Manav.

The World Centre of Humanism: Faquir Auditorium, Manav Dham

At Duhai, Distt. Ghaziabad (U.P.) India

Unexpectedly, the cost of the construction of Faqir Auditorium in Manav Dham having risen sky-high, the work of construction had to be stopped. After appeal of funds to the readers and satsangees about Rs. 100,000/- has been received as donation. But this is not sufficient. More funds are needed.

It has been suggested that some people would like to donate Rs. 10/- in India or 10/- Dollars in U.S.A. a month to fulfill this noble task. Through this appeal, I would like the readers and satsangees to come forward with regular donations to be sent to the Secretary, International Society of Humanism, Quarter No. 2, Teachers Colony, Modi Nagar, (U.P.) India, monthly, quarterly or bi-annually whatever meagre amount they can comfortably spare. The foreign donations should be sent in the name of Manavata Mandir, Hoshiarpur, Punjab, India, instead

of the International Society of Humanism.

The construction of the Faqir Auditorium in the complex of Manav Dham, which would also include Guest Houses, School, Clinic aud Home for the destitute, would no doubt prove to be the centre of World Humanism thereby creating the atmosphere of Good-Will International Understanding and World Peace.

Humanism, which is the ground of all religions and denominations and which is the universal need of the mankind, would lead to Fellowship of Faiths and the Brother of Mankind.

It will be desirable to start sending your donations according to your own capacity during the month of November 1990 which happens to be the birth month of H. H. Late Pt. Faqir Chand Maharaj the founder of the Temple of Man (Manavata Mandir) in Hoshiarpur.

Yours in Manav

Secretary

———

सुसमाचार

सभी सत्संगी व प्रेमी भाई-बहनों को सूचित किया जाता है कि परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हज़ूर मानव दयाल जी महाराज का पराआध्यात्मिक सत्संग सालवान पब्लिक स्कूल, पुराना राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली में दिनांक 4-11-90 रविवार को प्रातः 9 से 12 बजे तक तथा सायं 3 से 5 बजे तक होगा।

सभी सत्संगी व प्रेमी भाई-बहनों का सत्संग में सप्रेम स्वागत है।

नोट :— यदि दिल्ली के हालात उस समय प्रतिकूल हुए तो सत्संग प्रोग्राम स्थगित हो जायेगा।

जनरल सेक्रेटरी

सुखद सूचना

सभी सत्संगी भाई-बहनों को सूचित करते हमें हर्ष हो रहा है कि परम सन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज का 104वाँ जन्म-महोत्सव मानवता मन्दिर होशियारपुर के प्रांगन में, आगामी 17 व 18 नवम्बर 1990 को बड़े धूमधाम से मनाया जायेगा।

इस उपलक्ष में परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हज़ूर मानव दयाल जी महाराज का सत्संग 17 नवम्बर 1990 को सायंकाल 4 से 7 बजे तक और 18 नवम्बर 1990 को प्रातःकाल 8 से 11 बजे तक होगा। साथ ही भण्डारा भी आयोजित है।

सभी सत्संगी व प्रेमी भाई-बहन इस शुभ अवसर से लाभ उठाने के लिए सप्रेम आमंत्रित हैं।

जनरल सेक्रेटरी

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 21-10-1990 को होगा।

Regd. No. 26265/74
MANAV MANDIR

OCT. 10th 1990
NWHSP—7

Address

3809
150

Sh. Srisatya Narayan H/E
H. No. 1-8-213/1 Penderghost
Road Secunderabad (A.P.)
500003

From :

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001

Shiv Dev Rao Press, Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)